संपादन:
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
दीपक वर्मा
गौतम पांडेय

वितरण:
महेश बसेड़िया

सहयोग:
गजेन्द्र सिंह राठौर
रामभरोस यादव
अनिल पटेल
बृजेश सिंह

शैक्षिक
संदर्भ
शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-43, अगस्त-सितंबर 2002

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 253518
ई-मेल: eklavyamp@vsnl. com

एक प्रति: 15 रुपए
वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 75 रुपए
आजीवन सदस्यता: व्यक्तिगत 1000 रुपए
संस्थागत 2000 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: गोल्डन यानी सुनहरी बांस की एक किस्म। यह जानकारी तो सबको होती है कि बांस में हर साल फूल नहीं लगते, और यह भी कि जब भी बांस को फूल लगते हैं तो आसपास के सब पेड़ों में एकसाथ ही फूल खिलते हैं। हो सकता है कि आपने कभी सोचा भी हो कि ऐसा क्यों होता है। बांस के इस लक्षण के कारण तलाशता और कुदरत में पाए जाने वाले ऐसे अन्य उदाहरणों से उसकी तुलना करता हुआ स्टीफन जे. गूल्ड का अनूठा लेख पृष्ठ 24 पर।

पीछे का आवरण: अंडे या फल जैसे दिखने वाले एक प्यूपा में से निकलने वाले पतिंगे के नर व मादा के चित्र। किस इल्ली या लार्वा का कायांतरण किस तरह के प्यूपा में होगा और फिर अंत में उसमें से किस तरह का जीव निकलेगा इसे पता करने का एक ही तरीका है कि उसकी प्रत्येक अवस्था का अवलोकन किया जाए; जो ज़्यादा मुश्किल नहीं होता अगर इल्ली या लार्वा को उसके मन-मुताबिक पर्याप्त भोजन उपलब्ध करा दिया जाए। एक विशेष उदाहरण के बारे में पढ़िए पृष्ठ 96 पर, साथ ही अंदर के आवरण पर देखिए विभिन्न अवस्थाओं के अवलोकन करते हुए बनाए गए चित्र।

चित्र निम्न किताबों से: ***बायोलॉजिकल साइंस:*** *विलियम टी. कीटन, जेम्स एल. गूल्ड; प्रकाशक: डब्लू. डब्लू. नॉर्टन एंड कम्पनी, न्यूयॉर्क।* ***डाउन टू अर्थ:*** *जून 30, 2002; प्रकाशक: सुनीता नारायण।* ***शिक्षा का वाहन कला:*** *देवी प्रसाद; प्रकाशक: नेशनल बुक ट्रस्ट।* ***द इलस्ट्रेटेड साइंस एंड इनवेंशन एनसाइक्लोपीडिया,*** *भाग 16; प्रकाशक: एच. एस. स्टुटमेन, न्यूयॉर्क।* ***आइंस्टीन्स मिरर:*** *टोनी हे एंड पेट्रिक वाल्टरर्स; प्रकाशक: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।* ***साइंटिफिक अमेरिकन पत्रिका,*** *अप्रैल 1963 का अंक।* ***गाइड टू श्रब्स; प्रकाशक:*** *साइमन एंड शूस्टर, न्यू यॉर्क।*

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सहयोग और बंधन से बनते हैं ठोस रिश्ते

हीरे की खूबसूरती और ठोसपन बंधनों का ही नतीजा है।
किसी पत्रिका की खूबसूरती और विश्वसनीयता भी पाठकों के साथ बन रहे रिश्तों से तय होती है।

आप संदर्भ के साथ अपने रिश्ते को और मज़बूत बना सकते हैं
संदर्भ सदस्यता की दरें इस प्रकार हैं:

सदस्यता शुल्क	एक साल	दो साल	तीन साल
व्यक्तिगत/स्कूल	75 रुपए	140 रुपए	200 रुपए
अन्य संस्थाएं	150 रुपए	280 रुपए	350 रुपए

संदर्भ की आजीवन सदस्यता भी उपलब्ध है:

आजीवन सदस्यता	शुल्क
व्यक्तिगत	1000 रुपए
संस्थागत	2000 रुपए

संदर्भ का सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से भेज सकते हैं।
संपर्क करें:

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद
पिन: 461001
फोन: 07574–253518 ई मेल: eklavyah@yahoo.com

किस्सा बांस के फूलों का 24

बांस के बारे में ऐसे अवलोकन हैं कि इसमें फूल खिलने में बरसों बीत जाते हैं। बांस की कुछ प्रजातियों में 13 या 17 साल के नियमित अंतराल से फूल खिलते हैं तो कुछ में लगभग 120 साल के लंबे समय अंतराल के बाद फूल देखना नसीब हो पाता है। पहला सवाल तो यही है कि बांस गुज़रते हुए समय की गिनती किस तरह कर पाता होगा? क्या संग्रहित भोजन की मात्रा के आधार पर, या किसी प्रकाश आधारित रसायनों के संग्रह या विघटन के आधार पर?

लेकिन इससे भी ज़्यादा उलझाव भरा सवाल है कि बांस को 17 साल या 120 साल बाद एकसाथ खिलने से ऐसा क्या खास फायदा मिलता है जो हर साल या दो साल में खिलने वाली वनस्पतियों को नहीं मिल पाता? इस लेख में प्रस्तुत है स्टीफन जे. गूल्ड के लेखन की एक और बानगी।

विज्ञान से शांतिवाद तक . . . 57

यूं तो अल्बर्ट आइंस्टाइन का अलग से परिचय देने की ज़रूरत नहीं है। प्रकाश क्वांटम परिकल्पना, द्रव में अणुओं की गति नापने के तरीके, सापेक्षता के विशिष्ट और सामान्य सिद्धांत तथा $E=mc^2$ का प्रसिद्ध समीकरण आदि उनकी जुझारु, विचारशील वैज्ञानिक की छवि को पुख्ता करते हैं। लेकिन आइंस्टाइन सिर्फ वैज्ञानिक नहीं थे। यूरोप में चल रहे मज़दूर आंदोलनों, जनमानस में पैठ बना रहे समाजवादी विचारों के प्रति भी उनके मन में विशेष आस्था थी। विज्ञान और समाज के अंतर्संबंधों को लेकर उनके पास एक दृष्टिकोण था। वे मानते थे कि विज्ञान कभी भी समाज से कट नहीं सकता, अलग नहीं हो सकता। उसके परिणामों का तो समाज पर प्रभाव पड़ना ही है। यहां हम आइंस्टाइन के व्यक्तित्व के कुछ और पहलुओं के बारे में भी जानेंगे।

पाठ्यक्रम निर्माण के 71

यह लेख शिक्षा से जुड़े कई ज़रूरी प्रश्नों को जोड़ता है। मसलन क्या छोटी उम्र में पास की और बड़ी उम्र में दूर की विषय वस्तु ज़्यादा प्रासंगिक होती है? क्या परिवेश की होने भर से कोई विषय वस्तु छात्र के लिए रुचि और अर्थ ग्रहण कर लेती है। यदि संदर्भों की सारपूर्ण चर्चा से ही कोई विषय प्रासंगिक बनता है, चिंतन व अभिव्यक्ति को प्रेरित करता है – तो संदर्भों के निर्माण के लिए पाठ्यक्रम के अंदर और बाहर किस तरह के प्रयास किए जाने ज़रूरी हैं? पाठ्यक्रम में विषय वस्तु के चुनाव की सदाशयता पर आम सहमति कैसे बन सकती है? यह सहमति किन मूल्यों पर टिकी होनी चाहिए?

सदानंद की नन्ही दुनिया ...79

बच्चों की दुनिया निराली है। वहां खुश दिखने के लिए हंसना, मज़ाक करना ही एक मात्र विकल्प नहीं है उनके पास। बच्चे अपनी खुशी किसी भी चीज़ में खोज लेते हैं। हो सकता है एक बिनौला, कौआ, टिड्डा या एक चींटी बच्चे को वो खुशी दे जाए जो एक मंहगा खिलौना पाकर भी उसे न मिले। फिर सदानंद की तो चींटियों से खासी दोस्ती थी। सदानंद की दुनिया के कुछ नज़ारे सत्यजीत रे की कहानी के मार्फत आप भी ले सकते हैं।

शैक्षिक संदर्भ

अंक 43

अगस्त–सितंबर 2002

इस अंक में

आपने लिखा ... 5

नकल क्यों नहीं ... 6
देवीप्रसाद

विज्ञान की पढ़ाई ... 13
कैरन हैडॉक

किस्सा बांस के ... 24
स्टीफन जे. गूल्ड

तंत्रिका तंत्र में ... 33
जे. बी. एस. हाल्डेन

सवालीराम ... 40

ज़रा सिर ... 46

गणित शिक्षण में ... 47

विज्ञान से शांतिवाद .. 57
सुबीर सरकार

पाठ्यक्रम निर्माण... 71
रश्मि पालीवाल

सदानंद की नन्ही दुनिया 79
सत्यजीत रे

रेशमकीट का जीवन ... 96
के. आर. शर्मा

संदर्भ सजिल्द उपलब्ध हैं

अंक 1-6
मूल्य 100 रुपए

अंक 31-36 समेत अंक 7-12
मूल्य 100 रुपए मूल्य 100 रुपए
डाक खर्च संदर्भ डाक खर्च
समेत अंक 37-42 समेत
मूल्य 100 रुपए
संदर्भ डाक खर्च संदर्भ
अंक 26-30 समेत अंक 13-18
मूल्य 100 रुपए मूल्य 100 रुपए

समेत अंक 19-25 समेत
मूल्य 100 रुपए

पिछले सात सालों में प्रकाशित समस्त सामग्री संदर्भ की सात सजिल्दों में समेटी गई है।

हरेक सजिल्द के साथ है एक विषयवार इंडेक्स जो किसी भी लेख को तुरंत आपके सामने लाए।

प्रत्येक का मूल्य डाक खर्च समेत 100 रुपए मात्र।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।
ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।
अधिक जानकारी के लिए जल्द संपर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाजार
होशंगाबाद, म. प्र. 461001
फोन: 07574 - 253518

एकलव्य
ई-7/एच.आई.जी. 453, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल, म. प्र. 462016
फोन: 0755 - 463380

आपने लिखा

मुझे संदर्भ के तीन अंक 40, 41 और 42 प्राप्त हुए। ज्वार-भाटा विषय पर प्रकाशित लेख से काफी नई जानकारियां मिलीं। अंक 42 में प्रकाशित 'दिखता है फल जैसा...' तथा 'नाइट्रोजन स्थिरीकरण' जैसे लेख भी वाकई ज्ञानवर्धक थे। मेरे पिताजी ने भी बहुत रुचि के साथ संदर्भ को पढ़ा।

शाहिना, ज़िला समन्वयक
शांति नगर, गुड़गांव, हरियाणा

शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ा होने के नाते मैं शिक्षा के संदर्भ में कुछ बातों पर आप सबका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। जैसे: मूलभूत शिक्षा सुविधाओं के बगैर विद्यालय, कक्षा 1 से 5 तक के लिए एक शिक्षक, शिक्षकों के लिए सालभर रोज़ कोई-न-कोई गैर शैक्षणिक कार्य, शिक्षा विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार, कमज़ोर तबकों के बच्चों का स्कूल न आ पाना, शिक्षाकर्मियों का शोषण वगैरह।

शैक्षिक संदर्भ के दर्जनों अंक देखे लेकिन उपरोक्त में से किसी भी विषय पर कोई लेख नहीं दिखा।

पिछले दिनों 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' बंद हुआ लेकिन संदर्भ पत्रिका में इस पर भी कोई लेख नहीं था।

अजित जैन 'जलज'
ककरवाहा, ज़िला टीकमगढ़, म. प्र.

हालांकि यह खत संदर्भ के किसी लेख से संबंधित नहीं है फिर भी मैं आपने लिखा के मार्फत संदर्भ के पाठकों तक पूर्ण विराम के महत्व से संबंधित एक छोटा-सा खत पेश कर रहा हूं। जिसे मैंने भी कहीं पढ़ा है। इसके मूल लेखक का नाम पता मैं भी नहीं जानता।

एक पत्नी ने अपने पति को खत लिखा जिसमें कहीं भी पूर्ण विराम नहीं लगाया। खत लिखने के बाद उसे अपनी गलती का अहसास हुआ तो उसने अपनी भूल को सुधारते हुए अपनी समझ के हिसाब से कुछ जगहों पर पूर्ण विराम लगा दिए, जिससे खत में लिखी बातों के सारे अर्थ ही बदल गए। उसका भेजा खत इस तरह था:

प्रिय पतिदेव,

प्रणाम। आपके चरणों में क्या चक्कर है। आपने कितने दिनों से चिट्ठी नहीं लिखी मेरी प्यारी सहेली गीता को। नौकरी से निकाल दिया हमारी गाय ने। बछड़ा दिया है दादाजी ने। शराब पीनी शुरू कर दी है मैंने। बहुत पत्र डाले मगर तुम नहीं आए मुर्गी के बच्चे। भेड़िया खा गया है राशन की चीनी। छुट्टी पर आते वक्त ले आना एक खूबसूरत औरत। मेरी नई सहेली बन गई है तुम्हारी मां। तुम्हें बहुत याद करती है एक पड़ोसन। मुझे तंग करती है तुम्हारी ज़मीन। पर गेहूं उग आई है ताऊजी के सिर में। सीकरी हो गई है मेरे पैर में। चोट लग गई है तुम्हारी चिट्ठी को। हर वक्त तरसती रही।

आपकी नीतू

रमेश जांगिड
भिरानी, ज़िला हनुमानगढ़, राजस्थान

नकल क्यों नहीं?

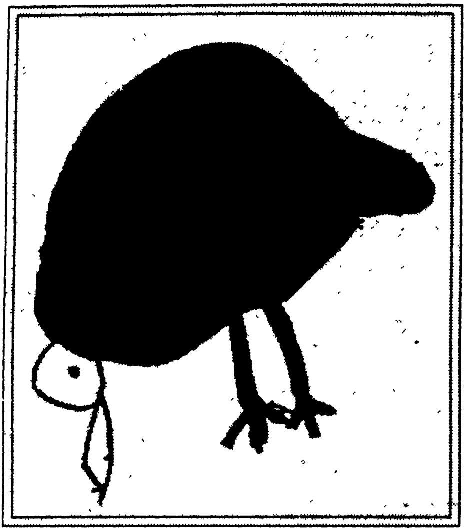

पांच साल के बच्चे द्वारा बनाया गया पक्षी। इस चित्र में बच्चे के दिमाग में अपने प्रतीक का आकार एकदम स्पष्ट था।

देवी प्रसाद

आनंदनिकेतन शाला के कार्यकर्त्ताओं की साप्ताहिक बैठक में 'बच्चों की कला' के बारे में चर्चा हो रही थी। एक साथी ने प्रश्न किया, "आप बच्चों को चित्र देखकर ड्राइंग क्यों नहीं करने देते?"

मैंने पूछा, "किन चित्रों को देखकर?"

"अच्छे-अच्छे चित्रों को। उन चित्रों को, जिनमें अनुपात वगैरह ठीक होता है। उन्हें देखकर अगर बच्चे चित्रकला का अभ्यास करें, तो जल्दी सीख सकेंगे और उनके चित्र भी अच्छे होंगे। आखिर कहते हैं न कि बच्चे तो अनुकरण से ही सीखते हैं।" साथी ने कहा।

मुझे याद आ गया स्वर्गीय फ्रांज़ सिज़ेक का यह वाक्य, "बच्चों की कला वही है जिसे बच्चा ही निर्माण कर सकता है। कुछ ऐसी भी चीज़ें हैं, जिन्हें बच्चा भी कर सकता है, लेकिन उसे हम कला नहीं कहते, वह नकल है, नकली है।"

यह वाक्य उन्हें तो नहीं दोहराकर सुनाया, लेकिन प्रश्न के उत्तर के लिए उसी वाक्य ने प्रेरणा दी।

बच्चों के बनाए चित्र भी स्व-अनुभूति द्वारा निर्मित हो सकते हैं इस बात पर यकीन करना थोड़ा मुश्किल ज़रूर है लेकिन यह एक सच्चाई है। बच्चा अपने आसपास के परिवेश को देखता है, उसे अनुभव करता है, उससे अंतर्क्रिया करता है और उसे अपने आकारों-प्रतीकों, रेखाओं, रंगों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कोशिश करता है। समय गुज़रने के साथ बच्चे के अनुभव का दायरा बदलता जाता है तो उसकी अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन नज़र आने लगते हैं।

स्कूलों में चित्रकला के पीरियड होते हैं। इनमें बच्चों की अभिव्यक्ति को कलात्मक स्पर्श देने के नाम पर क्या कुछ नहीं हो रहा है। अच्छे चित्रों की नकल करवाकर अच्छे चित्रकार बनाने की कोशिशें हो रही हैं? क्या अच्छे चित्रों का यही मतलब है कि चित्र शोख रंगों वाले, वास्तविक, गणितीय अनुपात के हिसाब से बनाए गए हों! यदि अच्छे चित्रों से हमारा यह तात्पर्य नहीं है तो बच्चों को उनकी गति से, उनके अनुभवों से चित्र बनाने दीजिए। अच्छे चित्रों की नकल से हम बच्चों की अभिव्यक्ति को कुचलेंगे ही।

हां, सभी शिक्षा-शास्त्री कहते हैं कि बच्चे तो अनुकरण से ही सीखते हैं। लेकिन जब सोचता हूं कि उस बात को आम शिक्षक किस मायने में लेता है, तो जी चाहता है कि कहूं कि गलत है वह विचार। वह यह भूल जाता है कि बच्चा एक स्वतंत्र प्राणी है, अनुकरण करने का यंत्र नहीं। वह तोता नहीं है। बच्चा अपने में परिपूर्ण व्यक्ति है। यह ख्याल कि बच्चा सयाने का अपूर्ण स्वरूप है, गलत है। आजकल तो वैज्ञानिक मानते हैं कि बच्चा एक 'नन्हा सयाना' (मिनियेचर एडल्ट) नहीं है। बच्चा ऐसे बड़ा नहीं होता है, जैसे सयाना बड़ा होता है और बच्चा न ही उस जगत में रहता है, जिसमें सयाना। इसलिए उसकी प्रवृत्तियां भी बड़ों की प्रवृत्तियों से अलग तरह की होती हैं और होनी भी चाहिए। यही बात है चित्रकला में नकल करने की भी। सयानों को शायद नकल द्वारा सिखाना पड़ता हो, लेकिन बच्चों को

नकल से दूर ही रखना चाहिए।

नकल का अभ्यास कराने से बच्चे के अंदर जो है, वह प्रकाश नहीं पाता और न ही वह प्रकट हो पाता है। नकल का मतलब है कि वह सयानों के जगत में प्रवेश करे। ज़ोर-जबर, बहलाव या किसी भी परिस्थिति के कारण भले ही बच्चा सयानों के चित्रों जैसा चित्र बना ले, लेकिन जैसा सिज़ेक ने कहा है कि 'वह स्वाभाविक नहीं होगा, नकली होगा।'

अनुभूतियां और अभिव्यक्ति

बच्चा जो चित्र बनाता है या चित्रकार भी जो चित्र बनाता है वह उसके अंदर की अनुभूति द्वारा निर्मित होता है। दूसरों की आंखों देखा नहीं, खुद देखा, खुद महसूस किया हुआ। बच्चा इस जगत को जैसे देखता है, जैसा उसे उसका अनुभव होता है और जिस तरह की प्रतिक्रियाएं उसके अंदर होती हैं, उन सबको लेकर उसके दिमाग में आकारों का निर्माण होता है। यह उसका बाहरी जगत का ज्ञान होता है, जिसका आत्म प्रकटन वह चित्रकला द्वारा करता है। वह इन आकारों द्वारा प्रकाश पाता है। यह आकार ही उसकी चित्र भाषा की बारहखड़ी होती है। इसलिए जो चित्र वह अपनी भाषा द्वारा बनाता है, वह उस भाषा के मापदंड के हिसाब से ठीक होते हैं। चित्र अच्छा बना या गलत, यह कहने का अधिकार उसी व्यक्ति को है, जो बच्चे की इस 'चित्र भाषा' से परिचित है। एक भाषा वाला व्यक्ति अगर दूसरी भाषा के वाक्य की रचना की परख अपनी भाषा के व्याकरण से करे और कहे कि वाक्य रचना गलत है, तो अन्याय करेगा। बच्चे की आकार की भाषा बनती है, उसके पूर्ण व्यक्तित्व के अनुभव द्वारा। और सयाने के आकार की भाषा अक्सर केवल आंख के अनुभव से बनती है। ये दोनों निराली हैं। इनकी एक-दूसरे के साथ तुलना नहीं की जा सकती।

बच्चा जो 'जानता' है, उसका चित्र बनाता है और सयाना जो 'देखता' है उसका। इसलिए बच्चा अगर ऐसा चित्र बनाए, जो सयाने के चित्र जैसा हो, तो स्वाभाविक नहीं होगा। व्यक्ति किशोर-अवस्था पार करने के बाद ही सयाने के जैसा देखना शुरू करता है। अगर उस अवस्था में पहुंचने के पहले ही बालक को उसमें प्रवेश करने के लिए बाध्य किया जाएगा, तो यह अन्याय होगा और बालक के स्वाभाविक विकास में बाधारूप होगा।

आकारों की बदलती भाषा

पहले ही कहा गया है कि बालक की आकारों की भाषा अपने ही निराले ढंग की होती है। वे आकार केवल आंख से दिखने वाले आकारों से भिन्न होते हैं और उन आकारों का स्वरूप

बालक की उम्र और उसके अनुभवों के साथ-साथ बदलता जाता है। अगर बालक की उम्र के हिसाब से अनुभव भी उपयुक्त ढंग के मिल रहे होंगे, तो उसके ये आकार भी अपनी स्वाभाविक गति से विकसित हो रहे होंगे। दूसरे ढंग से इस बात को रखें, तो कह सकते हैं कि बच्चों के चित्रों से परखा जा सकता है कि बच्चे के व्यक्तित्व का विकास स्वाभाविक और ठीक गति से हो रहा है या नहीं।

नकल के सिलसिले में ज़रा सोचकर देखिए। अगर आप बच्चे को नकल करके चित्र बनाने के लिए कहेंगे, तो उसकी अपनी अनुभूति द्वारा प्राप्त 'आकार' और उसका व्यक्तित्व, इन दोनों के बीच के संबंध का क्या होगा? नकल से बच्चे के मानस का एक अंग अप्रकट यानी अधूरा ही रह जाएगा। उसके कला-अनुभव की बात छोड़ ही दीजिए। वह उससे तो पूर्ण वंचित ही रह जाएगा।

नकल के उद्देश्य

नकल कराकर चित्रकला सिखाने की जो ख्वाहिश है, उनके पीछे यही भावना है कि बच्चा ऐसी चित्रकला सीख ले, जिसमें अनुपात आदि ठीक ढंग का और कला के व्याकरण के अनुसार हो। इसमें कोई शक नहीं कि अगर किसी को चित्रकार होना हो, तो उसे किसी-न-किसी तरह की चित्रकला की शिक्षा लेनी ही होगी। बस, फर्क यही है कि इस तरह की चित्रकला वही सीख सकता है या कर सकता है, जिसकी उम्र और मन उसके योग्य अवस्था तक पहुंच गए हों। हर व्यक्ति को और खासकर शिक्षक को यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि 'बच्चों की कला' और 'सयानों की कला' का स्वरूप और ध्येय बिल्कुल अलग-अलग हैं। सबसे मुख्य बात तो यह जान लेनी चाहिए कि 'बच्चों की कला' हर बच्चे की होती है और सयानों की कला केवल कलाकार द्वारा ही निर्मित होती है। और अगर हम चित्रकला से उस 'व्यावहारिक ड्राइंग' का मतलब लेते हों, जिसमें परिप्रेक्षण (पर्सपेक्टिव) वगैरह के नियम आते हों, तो वह केवल व्यावहारिक ड्राइंग है, जिसका व्यवहार करने की उम्र आने पर उसका सीखना भी स्वाभाविक होता है। उसे सीखने के लिए उस अवस्था पर पहुंचना पड़ता है, जिसमें रेखागणित के कम-से-कम प्राथमिक पाठ सीखे जा सकें। और वह बाल्य अवस्था के परे की ही अवस्था है। 'बच्चों की कला' में उसका कोई स्थान नहीं।

बच्चों की कला का एक ध्येय यह है कि वह उसके पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में मदद करे। कला-अनुभव बच्चे के लिए मनोवैज्ञानिक और सौंदर्य-बोध दोनों ही दृष्टि से ज़रूरी माने जाते हैं। यह कला-अनुभव हर

1

बच्चों का सृजन: एक – चार साल के बच्चे ने कूची और रंग से कागज़ पर कुछ रंग बिखेरे थे। बाद में उसने इसे 'घोड़े' का नाम दिया। इस चित्र को ध्यान से देखिए, इस में सचमुच घोड़े का आभास मिलता है। **दो** – चित्रकारी के लिए पेंसिल, ब्रश के अलावा आलू, बैंगन, करेले जैसी सब्ज़ियों के टुकड़ों या अन्य आकारों का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। साढ़े चार साल की एक बालिका ने विविध आकारों के साथ खेलते हुए इस चित्र को बनाया। बाद में इसे 'घर' कहा। **तीन** – उम्र बढ़ने के साथ-साथ बच्चा अपने चित्रों में वास्तविकता लाने की कोशिश करता जाता है। जैसे यहां 14 वर्षीय लड़के ने अपने चित्र में हिरण को सटीक बनाने की कोशिश की है। उसने हिरण की टांगों के जोड़ आदि दिखाने की कोशिश की है। बच्चों की चित्रकला की समझ रखने वाला व्यक्ति इस वास्तविक चित्रण की कोशिश में ड्राइंग की कमज़ोरियों को भांप सकता है।

बच्चे को मिलना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसका तभी उपयोग होगा, जबकि वह अनुभव स्वतंत्र आत्म प्रकटन और बच्चे के कला-गुणधर्म पर आधारित होंगे। बाहर के सिखाए हुए आकारों का इस पहलू के लिए कुछ भी अर्थ नहीं है।

बालक अगर अपनी स्वाभाविक कला-सीढ़ी पर चढ़ता रहे, तो वह खुद ही बड़ों की कला अवस्था तक पहुंच जाता है। कहा गया है कि बच्चे के मन में ये आकार उम्र और अनुभव के साथ-साथ विकसित होते जाते हैं और आखिर बाल्यावस्था पार करने के बाद किशोर-अवस्था में प्रवेश करने पर ये आकार बिल्कुल बदल जाते हैं। वे धीरे-धीरे 'वास्तविक' स्वरूप ग्रहण करने लगते हैं और आखिर ये आकार

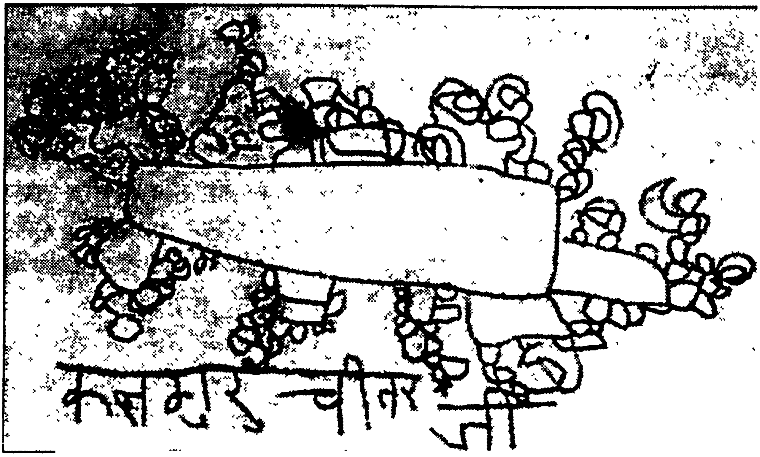

2

3

वास्तविक रूप के नज़दीक आ जाते हैं। तब 'बच्चे की कला' बदलकर 'सयानों की कला' बन जाती है।

शिक्षक यानी माली

जो शिक्षक अपने-आपको एक अच्छे माली की तरह समझते हैं, वे इस सत्य को आसानी से समझेंगे। अच्छा माली पौधों की सेवा करता है और देखता रहता है कि कहीं पौधों को कीड़ा या बीमारी तो नहीं लगी और क्या उन्हें पानी व खाद ठीक समय पर एवं ठीक मात्रा में मिल रहा है। वह कभी भी यह अपेक्षा नहीं करता कि गुलाब का जो फूल कल सुबह खिलने वाला है, वह आज और अभी ही खिल जाए। वह प्रकृति के निश्चित काल को खींच-तान करके बड़ा या छोटा करने की कोशिश नहीं करता। यही बात शिक्षक की भी है। वह बच्चे के स्वाभाविक विकास को होने दे और अपने को उस विकास के रास्ते की अड़चनों को दूर करने वाला ही समझे।

इस दृष्टि वाले शिक्षक शिक्षा-शास्त्रियों के इस कथन को कि 'बच्चे अनुकरण से सीखते हैं', ठीक रूप में लेंगे। 'बच्चे अनुकरण करते हैं' इसका अर्थ यह नहीं कि बच्चे नकलची होते हैं या बच्चे बंदर की जाति के होते हैं। बच्चे बंदर का सौंदर्य और उसका नटखटपन ज़रूर रखते हैं, लेकिन उनका विकास बंदर के नकलचीपन की तरह नहीं होता।

बच्चे हमेशा नया अनुभव लेना चाहते हैं और पुराने अनुभवों को दोहराकर पक्का कर लेना चाहते हैं। अगर उन्होंने अभी तक कोई बात देखी न हो और वह उनकी आंखों में पड़ जाए, तो वे फौरन उसे नए अनुभव के नाते खुद भी लेना चाहते हैं। वह नकल नहीं है। वह बंदर के अनुकरण जैसा नहीं है। वह तो उस कलाकार की तरह का है, जो हर चीज़ को देखता है, अध्ययन करता है और फिर निर्माण करता है। बच्चे अनुकरण करते हैं, इसका अर्थ हमें इसी माने में समझना चाहिए। बच्चे अध्ययन करते हैं, परख करते हैं, स्वयं अनुभव करना चाहते हैं।

देवी प्रसाद: शिक्षाविद व कलाविद। रवीन्द्रनाथ के स्कूल शान्तिनिकेतन से स्नातक की उपाधि ली। सेवाग्राम की आनंद-निकेतन शाला में कला विशेषज्ञ के रूप में कार्य करते हुए देवी प्रसाद जी ने बालकों के साथ हुए अपने अनुभवों के आधार पर सन् 1958 में एक पुस्तक तैयार की – 'शिक्षा का वाहन कला'। नेशनल बुक ट्रस्ट ने 1999 में इसे हिन्दी में प्रकाशित किया (पृष्ठ 138, मूल्य 50 रुपए)। उपरोक्त लेख इसी पुस्तक से लिया गया है।

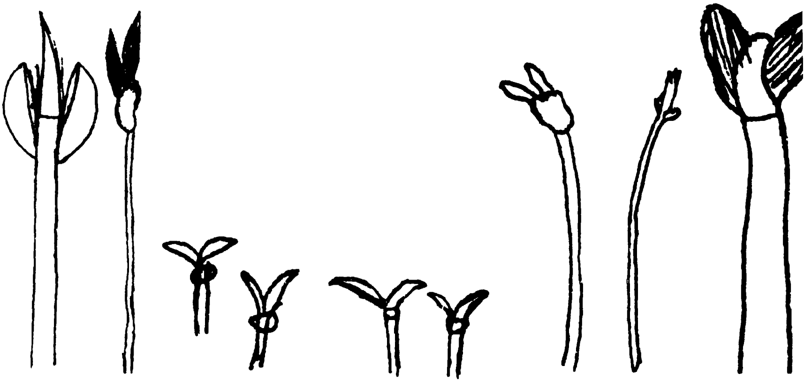

बीजों का अंकुरण: बच्चों का नज़रिया

विज्ञान की पढ़ाई में कला का स्थान

कैरन हेडॉक

चित्र बनाना और चित्रकारी के अपने हुनर को पहचानना स्वयं सशक्तिकरण का एक प्रभावशाली तरीका है। संप्रेषण और खुद की अभिव्यक्ति के लिए चित्र बना पाना, एक तरह से लिखने और पढ़ने जैसा ही है। इसमें अवलोकन, समझ, तुलना, विश्लेषण, संप्रेषण और सृजनात्मकता के साथ-साथ व्यक्ति की वैज्ञानिक साक्षरता भी बढ़ती है। इस लेख में बच्चों के चित्रों का किस प्रकार उपयोग या दुरुपयोग किया जा सकता है इस पर चर्चा होगी। चित्रकला

का वैज्ञानिक शैक्षिक सामग्री में किस प्रकार उपयोग व दुरुपयोग किया जा सकता है, मैं उस पर भी चर्चा करूंगी। विशेष तौर पर मैं ऐसे उदाहरणों का उल्लेख करूंगी जिनमें कला का उपयोग आनंद को बढ़ाने के लिए, जीवों व वस्तुओं को पहचानने के लिए, संरचना व प्रक्रिया को समझाने के लिए, और सामाजिक व राजनैतिक दृष्टिकोणों को औरों तक पहुंचाने के लिए किया जाता है।

विज्ञान सीखने और सिखाने में कला का क्या रोल है? कला को सकारात्मक तरीके से कैसे इस्तेमाल किया जा सकता है? कला का विज्ञान में अक्सर दुरुपयोग कैसे होता है? मैं इन प्रश्नों पर चर्चा करूंगी और उदाहरणों से समझाऊंगी कि कला को विज्ञान शिक्षण में कैसे उपयोग किया जा सकता है।

कला – दृष्टिकाण व्यापक बनाने में

विज्ञान शिक्षण में कला का एक स्वाभाविक कारण तो विज्ञान पुस्तकों, वर्कशीट, चार्ट और अन्य शैक्षिक सामग्री की सुंदरता को बढ़ाना है। कला को सजाने के काम में लाया जाता है और उससे छात्रों के लिए सामग्री को ज़्यादा सुंदर तथा रोचक बनाया जाता है। यह उद्देश्य अपने आप में काफी सार्थक है। उदाहरण के लिए चित्रकारी, पेंटिंग्स और फोटोग्राफ्स छात्रों को कला के प्रशंसक बनाने में सहायक हो सकते हैं।

परन्तु कला एक सुंदर चित्र से कुछ अधिक होती है। यह सुंदर होने के अलावा हमेशा कुछ कहती भी है। ऐसा कोई भी चित्र नहीं है जो सभी लोगों को सुंदर लगे और जो सभी छात्रों का मन लुभाने में सफल हो। सभी लोगों को खुश करना शायद उपयुक्त भी न हो – अच्छा तो तब होगा जब आम लोग कला के कुछ अनूठे नमूनों और उदाहरणों से परिचित होंगे। विज्ञान में चित्रकारी लोगों का सांस्कृतिक नज़रिया व्यापक करने और सौंदर्य के प्रति उनकी संवेदनाएं जगाने में भी सहायक हो सकती है। विज्ञान में कला के इस तरह के विविध मायनों, उपयोगों और दुरुपयोगों पर विस्तार से आगे चर्चा होगी।

अगर बच्चों को विज्ञान सीखते समय चित्र बनाने को कहा जाए तो उनकी विज्ञान में रूचि बढ़ेगी क्योंकि जब बच्चे चित्र बना रहे होते हैं तो वे सुनने या सिर्फ देखने के मुकाबले सीखने की प्रक्रिया में ज़्यादा गहराई से शामिल

हो पाते हैं। गतिविधियों पर आधारित विज्ञान की कक्षा में चित्र बनाना एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। कला खुद की अभिव्यक्ति का एक रोचक माध्यम भी है। यह कुशलता विज्ञान के अलावा अन्य सभी क्षेत्रों में भी बहुत उपयोगी होगी। इसलिए हम कला को पढ़ने, लिखने और गणित जितना ही ज़रूरी क्यों न समझें?

अवलोकन क्षमता बढ़ाने के लिए

जब छात्र किसी चीज़ को देखकर उसका चित्र बनाते हैं तो उससे उनकी चीज़ों को बारीकी से देखने की क्षमता पैनी बनती है। इसको आप एक सरल प्रयोग से परख सकते हैं। आप अपने सामने रखे गमले में लगे पौधे को देखें। अगर आप पौधे को गौर से देखेंगे और उसका चित्र बनाएंगे तो आप पाएंगे कि चित्र बनाने की क्रिया में आपको पौधे को बहुत बारीकी से देखना होगा, उसके विभिन्न भागों की तुलना या विश्लेषण करना होगा। अगर आप चित्र नहीं बना रहे होते तो शायद आप यह सब नहीं करते। आप शायद यह भी नोट नहीं करेंगे कि पत्तियां नीचे की ओर थोड़ी-सी गोलाकार हैं और कुछ पत्तियां नुकीली हैं व नीचे की ओर झुकी हुई हैं जबकि अन्य ऐसी नहीं हैं। आप शायद यह भी पाएं कि तने पर हरेक पत्ती के विपरीत ओर एक और पत्ती है, आदि।

छात्रों की अवलोकन की कुशलता को बढ़ाने के लिए यह ज़रूरी है कि चित्र बनाते समय जिस चीज़ का चित्र वे बना रहे हों वह एकदम उनके सामने हो। इस प्रक्रिया द्वारा वे बहुत अधिक सीखेंगे। अगर छात्रों से ब्लैकबोर्ड या पुस्तक में से किसी चित्र को उतारने को कहा जाए तो वे उतना नहीं सीखेंगे। शिक्षिका चाहे तो कक्षा को सीधे बता सकती है कि किसी विशेष पौधे की पत्तियां जोड़े में आमने-सामने लगी होती हैं, और फिर वो बच्चों से उन पत्तियों के चित्र की नकल उतारने को कह सकती है जिसे उसने बोर्ड पर बनाया है। परंतु पाठ तब कहीं अधिक रोचक होगा जब बच्चे, खुद चित्र बनाने के दौरान पौधे की पत्तियों का 'विपरीत होना' खोजेंगे।

एक उदाहरण लें जिसमें बच्चों से कुछ हरी सब्ज़ियों के चित्र बनाने को कहा जाता है। याद्दाश्त से बनाने की बजाए कहीं अच्छा यह होगा कि बच्चों के सामने तरह-तरह की हरी (और अन्य) सब्ज़ियां हों जिससे चित्र बनाते समय वे उनको बारीकी से देख सकें। अगर वे ऐसा करेंगे तो उन्हें पालक, मेथी, बंदगोभी, मिर्ची आदि सब्ज़ियां तो याद रहेंगी ही, साथ में वे चित्र बनाने के दौरान उनके आकार, नाप, उनके अलग-अलग रंगों और सतह के चिकनेपन या खुरदुरेपन के बारे में भी बहुत सी बातें सीखेंगे।

शिक्षकों को इस बात से डरना नहीं चाहिए कि छात्र जो कुछ देख रहे हैं उसका चित्र वे बना पाएंगे या नहीं। सबसे छोटे बच्चे भी अपनी रंगीन पेंसिल या क्रेयॉन लेकर चित्र बनाने के लिए अत्यन्त तत्पर होते हैं। जब बच्चों की थोड़ी 'शिक्षा' हो जाती है उसके बाद ही वे अक्सर यह कहते हैं, 'यह मुझ से नहीं बनेगा।' मेरा अनुभव तो यही है कि जो लोग एकदम हठ से कहते हैं कि वो चित्र बना ही नहीं सकते, वे असल में काफी अच्छे चित्र बनाते हैं। उनका भय खत्म करने और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए मैं एक ही नियम अपनाती हूं – मैं उनके लिए कभी भी चित्र नहीं बनाती हूं, और तो और, उनके कागज़ पर एक निशान तक नहीं लगाती हूं। मैं उनसे सिर्फ इतना कहती हूं, "मुझे पता है कि आप चित्र बना सकते हैं।" मैं उनसे यह कहती हूं कि उन्हें जो भी दिख रहा हो वो उसका वर्णन सुनाएं। कुछ देर बाद वे कह सकते हैं कि एक टहनी दिख रही है। 'अच्छा, उस टहनी का आकार कैसा है? क्या वो सीधी है या फिर बाएं या दाएं को मुड़ी है?' यह सब मैं उनके एकदम पास खड़े होकर पूछती हूं जिससे वो जो कुछ देख रहे हैं वह मुझे भी दिखे। 'वो उस तरफ मुड़ी हुई है', छात्र कह सकता है। 'तो फिर अपने कागज़ पर उस ओर मुड़ती हुई एक रेखा बनाओ', मैं कहती हूं। कुछ मिनटों बाद और सकारात्मक प्रतिक्रियाओं के बाद और बार-बार 'देखते रहो' की याद दिलाने के बाद छात्र पूरी लगन के साथ चित्र बनाने में लग जाएगा। अच्छा होगा यदि आप इस झिझकते हुए छात्र से उसकी रबड़ ले लें; इससे आप उस छात्र द्वारा बनाए चित्र को मिटाए जाने से पहले कम-से-कम देख तो पाएंगे। मुझे लगता है कि अगर छात्र बिना रंगे, पेन्सिल या पेन से चित्र बनाए तो ज़्यादा अच्छा रहेगा क्योंकि चित्र की बारीकियां काले और सफेद में अधिक स्पष्ट दिखेंगी।

अगर शिक्षक के दिमाग में छात्र के चित्रों को लेकर कुछ पूर्व-धारणाएं होंगी तो शायद उन्हें कुछ निराश होना पड़े, और इससे छात्र भी अपनी चित्रकारी की क्षमता पर शक करने लगेंगे। परंतु अगर शिक्षिका को बच्चों पर भरोसा हो और वह बच्चों को उनके खुद के तरीके से चित्र बनाने देगी तो फिर किसी को भी निराशा नहीं होगी। ऐसी स्थिति में बच्चे जो चित्र बनाएंगे वे सभी के सभी अद्भुत और चकाचौंध करने वाले होंगे!

अवलोकन करके जब बच्चे चित्र बनाएंगे तो वे चीज़ों को अपने दृष्टिकोण से देखेंगे। जब पांच बच्चों के बीच एक अंकुरित बीज रखा जाता है और उनसे उसका चित्र बनाने को कहा जाता है तो पांचों के चित्र बिल्कुल

अलग-अलग होंगे – एक जड़ों के छोटे रोंए दिखाएगा, दूसरे ने बीच के फटे कवच को दिखाया होगा, तीसरे ने जड़ के सिरे की नोक को दिखाया होगा। इस प्रकार वे एक-दूसरे से सीख सकते हैं। वे यह भी सीखते हैं कि किसी भी चीज़ को देखने का केवल एक ही तरीका नहीं होता है और विज्ञान में हमेशा कोई एक ही सही उत्तर नहीं होता है।

बच्चों ने जो कुछ देखा है उसे ही उन्होंने चित्र में बनाया है इसकी जांच बड़ी आसानी से की जा सकती है। जिस बच्चे ने बाएं हाथ वाले चित्र को बनाया उसने बाहर जाकर उगते सूरज को सचमुच में नहीं देखा होगा। इसके विपरीत, दायीं ओर वाला चित्र सूर्योदय को देखते हुए बनाया गया होगा।

कला द्वारा अवलोकन दर्ज करना

शब्दों की तुलना में चित्र अधिक जानकारी दे सकते हैं और उपयोगी हो सकते हैं।

उदाहरण के लिए, महुए के पत्तों, फूलों और फलों के शाब्दिक वर्णन को ही लें: "पत्तियों के गुच्छे टहनियों के सिरे पर लगे होते हैं। हरेक पत्ती 7-20 × 3-7 से.मी., आकार में अंडे जैसी, छुटपन में थोड़ी रोंएदार और बाद में अरोगिल, ग्लैबरस होती है। फूल टहनियों के सिरों पर घने गुच्छों में लगते हैं। फूलों में डंठल होते हैं, वे लटके-से रहते हैं और उन पर कुछ पाउडर-सा होता है, पुटक कैलिक्स डेढ़ से.मी. लंबा और आधार तक बंटा होता है और यह सामान्यत: चार खंड में बंटा होता है। दलपुंज कोरोला क्रीम के रंग का, लगभग ढाई से तीन से.मी. चौड़ा होता है। दलपुंज के करीब 8-10 कान होते हैं। पुंकेसर लगभग 25 होते हैं। अंडाशय रोंएदार होता है जो ढाई सेमी या उससे कुछ लंबी वर्तिका

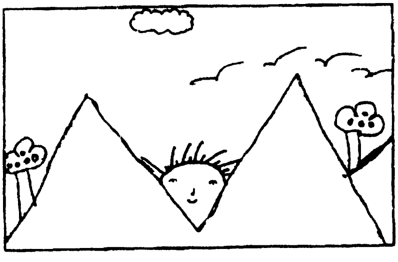

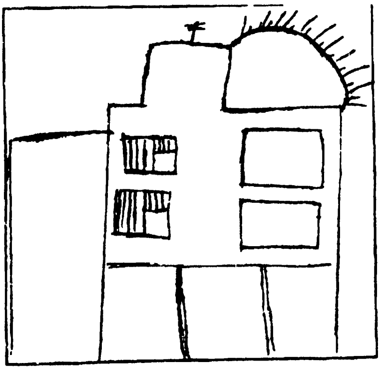

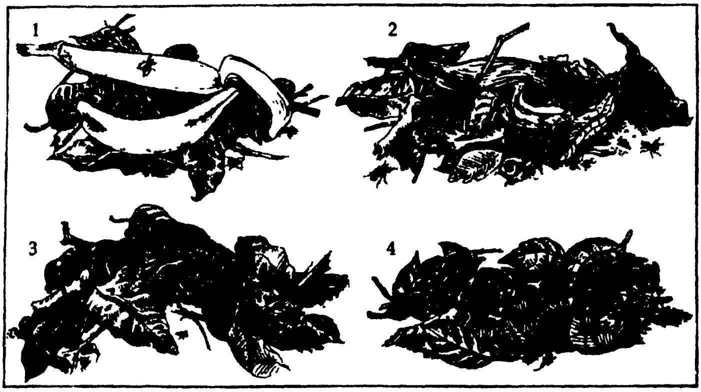

ऊपरः केले के सड़ते हुए छिलके के चार चित्र बनाए गए हैं। पहला 10 सितंबर को, दूसरा 14 सितंबर को, तीसरा 10 नवंबर को और चौथा 2 फरवरी को बनाया गया है। **नीचे:** महुए की एक टहनी। महुआ-वर्णन का शाब्दिक लुत्फ उठाने के बाद इस चित्र को देखिए।

को सहारा देता है। फल गूदेदार और हल्के रोएंदार, 3-5 सेमी लंबे, अंडाभ आकार के होते हैं जो पहले हरे और बाद में पीले-लाल या नारंगी रंग के हो जाते हैं। इन में एक से चार बीज होते हैं।" (*कॉमन ट्रीज़, एच. सांतापाऊ, नेशनल बुक ट्रस्ट, चित्र डी. पी देब से उद्धरित।*)

ऊपर लिखित सामग्री में काफी जानकारी है, परंतु जो लोग इस तकनीकी शब्दावली से अवगत भी हैं उनके लिए भी चित्र के ज़रिए पत्तियों और फूलों का अनुमान लगाना कहीं अधिक आसान होगा।

अवलोकनों को चित्रों के ज़रिए रिकॉर्ड करने का एक अन्य उदाहरण इसी पेज पर ऊपर दिया गया है।

यहां केले के छिलकों के सड़ने के क्रम को दर्शाया गया है।

बच्चे इस तरह के अवलोकन करके या उनके चित्र बनाकर अपनी-अपनी खोज कर सकते हैं। (इसमें क्या अलग है? क्यों, इसका ज़रा अनुमान लगाएं? आपको इन चित्रों में और क्या नज़र आ रहा है? क्या आपको इनमें कोई जीव नज़र आ रहा है? और वहां वो घोंघा क्या कर रहा है?)

एक बात का ध्यान रखें – हरेक चित्र का प्रकार और उसकी शैली महत्वपूर्ण होती है, और अलग-अलग प्रकार के चित्र अलग-अलग कार्यों के लिए उपयुक्त होते हैं। इन सड़ते केले के छिलकों के लिए शायद यह काला और सफेद चित्र ही अधिक उपयुक्त है, इससे हमें ज़्यादा जानकारी मिलती है। शायद रंगीन फोटोग्राफ से भी हमें इतनी जानकारी नहीं मिलती। इसी प्रकार महुए का रेखाचित्र हमारे लिए कम्प्यूटर के ज़रिए देखे जाने वाले सी-डी विश्वकोष के रंगीन फोटो से कहीं अधिक़ उपयोगी है। रंगीन फोटोग्राफ्स का इस्तेमाल अक्सर इसलिए किया जाता है क्योंकि प्रकाशक रंगों से ग्राहकों को लुभाने के चक्कर में पड़ जाते हैं और उपयोगिता से उनका ध्यान हट जाता है। या शायद यह भी हो सकता है कि रेखाचित्रों के लिए प्रकाशकों को रंगीन फोटोग्राफ्स की तुलना में अधिक पैसा खर्च करना पड़ता है? यह एक और उदाहरण है जहां मुनाफे के कारण विज्ञान का नुकसान होता है।

संरचना व प्रक्रियाओं को समझाना

अलग-अलग प्रकार के चित्रों द्वारा विज्ञान के भिन्न क्षेत्रों में घटनाओं, काम के तरीकों, और ढांचों को समझाया जा सकता है। इसके लिए तरह-तरह के रेखाचित्र, ग्राफ, वेन डायाग्राम, फ्लोचार्ट आदि का उपयोग किया जाता है। चित्रों द्वारा जटिल ढांचों और प्रक्रियाओं को सरल बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए पक्षी के पाचन-तंत्र को देखें।

विज्ञान की पुस्तकों में चित्र और फोटोग्राफ्स भी भ्रामक हो सकते हैं। अक्सर लेखकों और चित्रकारों के बीच में संवाद में खाई रह जाती है और कई बार चित्रकार चित्रों को बनाने से पहले चीज़ों का बारीकी से अध्ययन नहीं करते हैं, और न ही शोध में पर्याप्त समय लगाते हैं। सच बात तो यह है कि इसमें गलती असल में प्रकाशक की ही होती है क्योंकि उनके पास समय सीमित होता है, इसलिए वो जल्दी-से-जल्दी चित्रों को पांडुलिपि पर चिपकाना चाहते हैं। उदाहरण के लिए अगले पेज पर बनी चंद्रमा की इन कलाओं को ही देखें। ऐसे चित्र आपको भारत की तमाम विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में दिखेंगे। ऐसा लगता

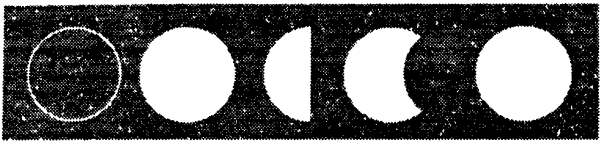

पाठ्य पुस्तकों में चांद की विविध कलाएं। चित्रकार और लेखक के बीच संवाद की खाई और अवलोकन की कमी।

है कि चित्रकार ने कभी भी चंद्रमा की ओर सिर उठाकर नहीं देखा है।

याद्दाश्त के लिए चित्रों की नकल

छात्रों से अक्सर चित्रों को नकल करने, उन्हें याद करने और परीक्षाओं में उन्हें दुबारा बनाने के लिए कहा जाता है। शायद कभी-कभी यह उचित हो सकता है परन्तु अक्सर इस विधि का याद रखने के तरीके के रूप में दुरुपयोग होता है। अच्छा तो यह होता अगर छात्र अपनी याद्दाश्त से आगे जाकर कोई ऐसा रोचक काम करते जिससे उनमें उच्चस्तरीय आलोचनात्मक सोच का विकास होता। किसी भी चित्र को याद करके उसे वैसा ही बना देना कोई कठिन काम नहीं है। शायद इसके लिए चित्र को समझने की कोई ज़रूरत भी नहीं है।

कला से सामाजिक एवं राजनैतिक नज़रिया प्रस्तुत करना

सीखने और सफलता हासिल करने में सबसे बड़ी दिक्कत होती है छात्र का अपनी क्षमता पर अविश्वास होना। खासकर जब हम गरीब बच्चों के साथ काम करते हों तब शिक्षकों को 'गरीबों का मनोविज्ञान' समझना चाहिए। गरीब बच्चों के लिए विज्ञान एक विदेशी चीज़ है जिसे वे बच्चे सीखते हैं जो उनके जैसे नहीं हैं। बच्चों को विज्ञान की पुस्तकों में लड़कियों के चित्र कम ही दिखते हैं और इससे उन्हें यह आभास होता है कि विज्ञान मुख्य रूप से लड़कों और मर्दों की चीज़ है। भारत में ऐसी विज्ञान की पुस्तकें मिलना

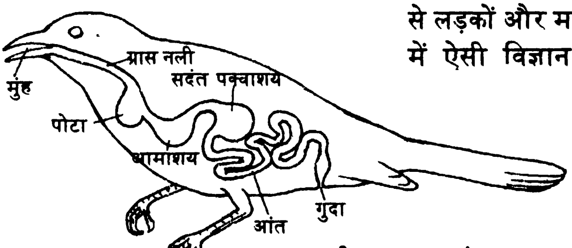

पक्षी का पाचन तंत्र

बहुत मुश्किल है जिसमें मर्दों की अपेक्षा औरतों के चित्र अधिक हों। साथ ही मर्दों को हमेशा सक्रिय भूमिका में प्रस्तुत किया जाता है और औरतों को केवल पृष्ठभूमि में सहायक या फिर दर्शक के रूप में दिखाया जाता है।

भारत में विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में दिखाए गए ज़्यादातर लोग देखने में यूरोपीय लगते हैं। उनका रंग कभी भी सांवला नहीं होता। भारतीय लड़कियों को इनमें कुछ भी अपने जैसा नहीं लगता। ज़रा सोचिए अगर उसे अपने जैसी दिखने वाली किसी लड़की का चित्र पुस्तक में दिखे जो सक्रिय रूप से विज्ञान का कोई प्रयोग कर रही हो, तो क्या होगा। ऐसा देखकर उसे अपनी कद्र समझ में आएगी और उसका हौसला भी बुलंद होगा।

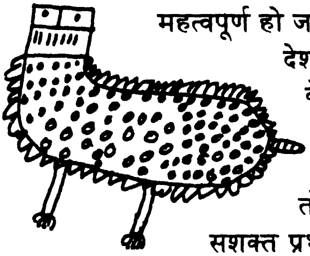

चित्रों की शैली भी यहां पर काफी महत्वपूर्ण हो जाती है। अगर पश्चिमी देशों की शैली के चित्रों के साथ ही पाठ्यपुस्तकों में इस तरह के चित्र भी हों तो उसका बच्चों पर एक सशक्त प्रभाव पड़ेगा। ऐसे बच्चे

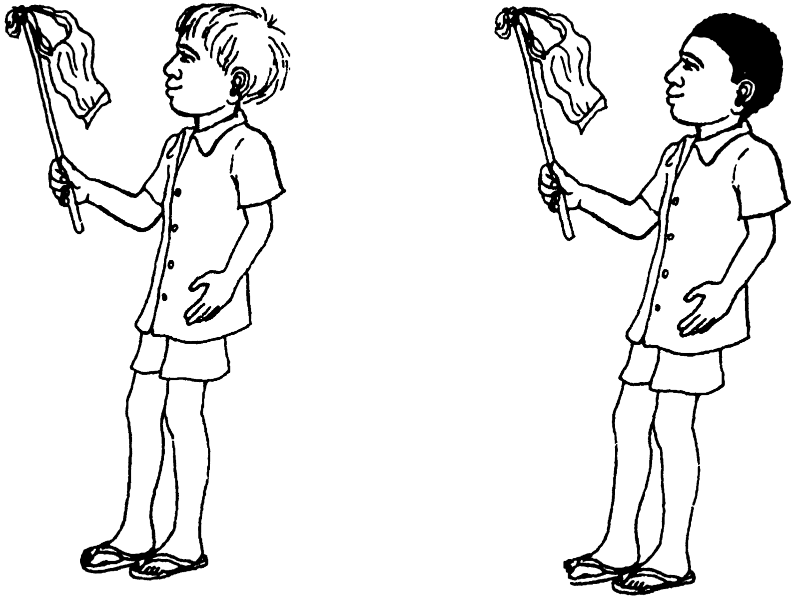

जो खुद इस तरह के चित्र बनाते हैं अपनी पुस्तक से एक खास जुड़ाव महसूस करेंगे।

चित्रों का हमेशा एक दृष्टिकोण होता है – चाहे वो विज्ञान को सीखने या सिखाने के लिए ही क्यों न इस्तेमाल में लाए जाएं। उदाहरण के लिए पिछले पेज पर बने उस चित्र को देखें जिसे किसी विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में शामिल किया जा सकता है। इस चित्र में एक छात्र लकड़ी की डंडी से बंधी प्लास्टिक की थैली से हवा कैसे बहती है, इसका प्रयोग कर रहा है। बहुत से लोगों को इस चित्र में एक सुन्दर-सा प्यारा-सा बच्चा दिखाई देगा।

परन्तु जब वही लोग दूसरे चित्र को देखते हैं तब उन्हें बच्चा उतना सुन्दर नहीं लगता है। दोनों चित्रों में केवल बालों का अंतर है। पहले चित्र में लड़का गोरी चमड़ी वाला कॉकेशियन लगता है। दरअसल लोग यह सोचने के लिए बाध्य हो गए हैं कि सुनहरे बालों वाले लोग अधिक सुंदर होते हैं। विज्ञान की पुस्तक में इन दोनों में से

खेती और भोजन अध्याय को पढ़ते समय कक्षा चौथी की एक छात्रा ने दाल पिसाई की प्रक्रिया को समझाने के लिए चित्रों का किस तरह इस्तेमाल किया, इसका एक अनूठा उदाहरण है यहां। चित्रों के साथ लिखी इबारत इस प्रकार है: सबसे पहले एक सपाट पत्थर और एक गोल पत्थर लेते हैं; उसके बाद उड़द दाल लेते हैं; फिर हम उसे पीसते हैं।

कौन सा चित्र इस्तेमाल किया जाएगा उसके हिसाब से उस पुस्तक में अंतर आएगा। दूसरे चित्र के साथ कुछ लोगों को पुस्तक उतनी आकर्षक नहीं लगेगी। परन्तु इस प्रकार की पुस्तक कॉकेशियन यानी गोरे लोगों के आधिपत्य को चुनौती देगी; और शायद कुछ बच्चे अपनी शक्ल-सूरत वाले बच्चे की तस्वीर को देखकर पुस्तक को बेहतर तरीके से अपनाएं। साथ ही दूसरे चित्र के साथ तैयार विज्ञान पुस्तक के अलग आशय होंगे। इन निहितार्थों को आप रोक नहीं सकते – क्योंकि कोई भी व्यक्ति एक ऐसी पुस्तक नहीं बना सकता जो सामाजिक रूप से उदासीन हो।

जब छात्र, विज्ञान सीखने के दौरान अवलोकन करके चित्र बनाते हैं तो वे कई ऐसी बातें भी कर पाते हैं जो उन्हें पहले असंभव लगती थीं। इससे उनमें सामर्थ्य का अहसास होता है। अपने अनुभव में मैंने जब कभी भी किसी छात्र द्वारा बनाए गए चित्र की कुछ अच्छी बातों की तारीफ की है और फिर उसे बोर्ड पर चिपकाया है, तब हमेशा चित्रकार के मुखड़े पर खुशी की चमक देखी है। ऐसे मौके पर असमर्थता और हीनता की सभी भावनाएं धुल जाती हैं।

लेकिन यहां पर शिक्षक को एक बात हमेशा याद रखनी चाहिए। उसे अलग-अलग बच्चों के चित्रों की तुलना कभी नहीं करनी चाहिए। चित्रों के बीच के अंतरों पर अवश्य चर्चा करनी चाहिए क्योंकि सभी बच्चों ने अलग-अलग शैली में चित्र बनाए होंगे और हरेक चित्र अपने आप में खूबसूरत होगा – एक कलाकृति होगी। इससे छात्र समझेंगे कि वो अपने आपको कला द्वारा व्यक्त कर सकते हैं और वे दूसरों के बनाए चित्रों से भी सीखेंगे और उनकी प्रशंसा करना सीखेंगे।

अंत में मैं विज्ञान शिक्षण में कला के महत्व को दोहराना चाहूंगी। कला का उपयोग न केवल कलाकारी करने में है बल्कि कला को देखने में भी है। कलाकारी करके छात्र कुछ नया सृजन कर सकते हैं और साथ ही अपने नए विचारों को अभिव्यक्त भी कर सकते हैं। जबकि कला देखकर वे नई दिशाओं और विचारों से प्रेरित हो सकते हैं।

करन हेडॉक: स्वतंत्र सामाजिक कार्यकर्ता, चित्रकार, बायो-फिज़िक्स में शोधकार्य। शिक्षा के क्षेत्र में एकलव्य एवं अन्य संस्थाओं के साथ सक्रिय भागीदारी। बच्चों के लिए किताबें लिखी हैं। चंडीगढ़ में रहती हैं।

अनुवाद: अरविंद गुप्ता। शिक्षा व विज्ञान पर लेखन के प्रकाशन व प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान। बहुत-सी नई गतिविधियां व मॉडल विकसित किए हैं। दिल्ली में रहते हैं।

यह लेख एडसिल द्वारा प्रकाशित 'इशूज़ इन प्राइमरी एजुकेशन' के अक्टूबर-दिसंबर 2001 अंक से लिया गया है।

किस्सा, बांस के फूलों का

स्टीफन जे. गूल्ड

कुदरत अक्सर मनुष्य की सबसे अनूठी किवदंतियों से भी आगे निकल जाती है। किस्से-कहानियों में कइयों बार राजकुमारी सालों-साल चिर-निद्रा में लिप्त रहती है, राजकुमार के इंतज़ार में। फ़ायलोस्टेचिस बम्बूसोयड्स जैसे

मुश्किल नाम वाले बांस की एक किस्म को सन् 999 में चीन में बहार आई यानी फूल लगे। उसके बाद से, बिना किसी नागे के, अचूक नियमितता के साथ हर 120 साल बाद इसमें फूल और बीज लगते आ रहे हैं। जहां भी अपना जीवन गुज़ारे, फायलोस्टेचिस बम्बूसोयड्स ने इस चक्र को बरकरार रखा है। इस सदी के छठवें दशक के उतरार्द्ध में बांस की एक जापानी नस्ल (जो सदियों पहले चीन से लाई गई थी) में एक साथ जापान, इंग्लैंड, अलबामा और रूस में बीज आए। इस बांस की तुलना निद्रा-सुंदरी से करना बहुत गलत नहीं है क्योंकि इस बांस में भी लैंगिक प्रजनन एक सदी से भी लंबे ब्रह्मचर्य के दौर के बाद होता है।

किस्सों की राजकुमारी से बांस की यह किस्म दो मायनों में अलग है। एक तो 120 साल के इस इंतज़ार के दौरान वे एकदम सुस्त नहीं पड़े रहते क्योंकि दरअसल तो यह घास की ही एक किस्म है; इसलिए अलैंगिक प्रजनन यानी वृद्धि के ज़रिए ज़मीन में दबे राइज़ोम से निकलने वाले नए अंकुरों के सहारे इनका कुनबा फैलता रहता है। कहानी से दूसरा फर्क है कि फूल खिल जाने के बाद ये बांस राजा-रानी की तरह अमन-चैन की ज़िंदगी नहीं गुज़ारते, चूंकि फूलने के तुरंत बाद वे खत्म हो जाते हैं – एक क्षणिक अंत के लिए एक लंबा इंतज़ार।

पेनसिल्वेनिया विश्वविद्यालय के पारिस्थितिकी-शास्त्री (इकॉलोजिस्ट) डेनियल जेन्ज़न ने अपने एक लेख में फायलोस्टेचिस के इस अनोखे किस्से का वर्णन दिया है। लेख का शीर्षक है – 'फूल खिलने से पहले बांस इतना इंतज़ार क्यों करते हैं?' बांस की ज़्यादातर प्रजातियों में फूल खिलने के दो दौर के बीच वर्धी-वृद्धि (वेजिटेटिव ग्रोथ) का अंतराल इतना लंबा नहीं होता, परन्तु एकसाथ बीज आने की नियमबद्धता किसी में नहीं टूटती। और ऐसी प्रजातियां भी बहुत कम हैं जो फूल खिलने के लिए 15 साल से कम इंतज़ार करती हैं (कुछ शायद 150 साल तक भी इंतज़ार करती हैं परन्तु ऐतिहासिक रिकॉर्ड की कमी की वजह से इनके बारे में पक्के तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता)।

ऐसी किसी भी प्रजाति का संचालन किसी आंतरिक, अनुवांशिक जैविक घड़ी के ज़रिए होता होगा, बाहरी वातावरण से मिलने वाले संकेतकों के

माध्यम से नहीं। ऐसा मानने के पीछे सबसे प्रमुख साक्ष्य है कि ये घटना बिना किसी गलती के उतनी ही नियमितता के साथ बार-बार दोहराई जाती है। हम किसी भी ऐसे पर्यावरण आधारित कारक को नहीं जानते जिसमें ऐसा चक्र पाया जाता हो जो सौ से ज़्यादा प्रजातियों में पाई जाने वाली विविध घड़ियों को आधार दे सके। दूसरा कारण है कि अपनी देशज जगह से हटाकर दुनिया के दूसरे छोर पर लगाने पर भी एक ही प्रजाति के पौधों में एक ही साथ फूल खिलते हैं। और अंतिम सबूत यह है कि एकदम अलग पर्यावरणीय परिस्थितियों में उगाने के बावजूद एक ही प्रजाति के पौधों में एक साथ फूल आते हैं। अपने लेख में डेनियल जेन्ज़न बर्मा के एक ऐसे बांस का किस्सा सुनाते हैं जो केवल आधा फुट ऊंचा था, जो जंगलों में लगने वाली आग की वजह से कइयों बार जल चुका था, परन्तु उसमें भी उसी समय फूल लगे जब आग की चपेट से बचे उसके 40 फुट ऊंचे साथियों में फूल खिले।

गुज़रते हुए सालों की गिनती बांस आखिर कैसे रख सकता है? जेन्ज़न का तर्क था कि संग्रहित भोजन का माप रख कर ऐसा कर पाना संभव नहीं है क्योंकि बांस के कुपोषित बौने पौधे भी उसी समय फूल देते हैं जब उनके साथी, स्वस्थ विशाल बांस के पेड़ों पर फूल आते हैं। उसका अंदाज़ा था कि यह केलेंडर "किसी तापमान-गैरआधारित, प्रकाश-आधारित रसायन के वार्षिक या रोज़ाना संग्रह या विघटन" पर आधारित होना चाहिए। उसे इस बात का अनुमान लगाने के लिए कोई भी आधार नहीं मिल पाए कि यह प्रकाश-चक्र दैनिक है या वार्षिक। जेन्ज़न का कहना था कि इस प्रक्रिया में घड़ी के रूप में प्रकाश का ही इस्तेमाल होता है यह इंगित करता हुआ एक पारिस्थितिक साक्ष्य यह है कि भूमध्यरेखा के 5 अंश उत्तर और दक्षिण के बीच इस तरह के नियत चक्रों वाली बांस की प्रजातियां नहीं पाई जाती हैं – शायद इसलिए क्योंकि इस इलाके में दिन-रात और मौसमों में विविधता बहुत ही कम होती है।

यह खासियत सिर्फ बांस में नहीं

बांस पर फूल खिलने के किस्से से ऐसी ही निश्चित अवधि की चक्रियता का एक और किस्सा ख्याल आता है जिससे शायद हम ज़्यादा परिचित हैं – निश्चित व बराबर अंतराल के बाद दिखने वाला सिकाडा नाम का कीट। इस सिकाडा का किस्सा तो और भी अजीबो-गरीब है – 17 साल तक इस सिकाडा के शिशु (निम्फ) ज़मीन के नीचे रहते हैं – संपूर्ण पूर्वी अमरीका में पेड़ों की जड़ों से रस चूसते हुए।

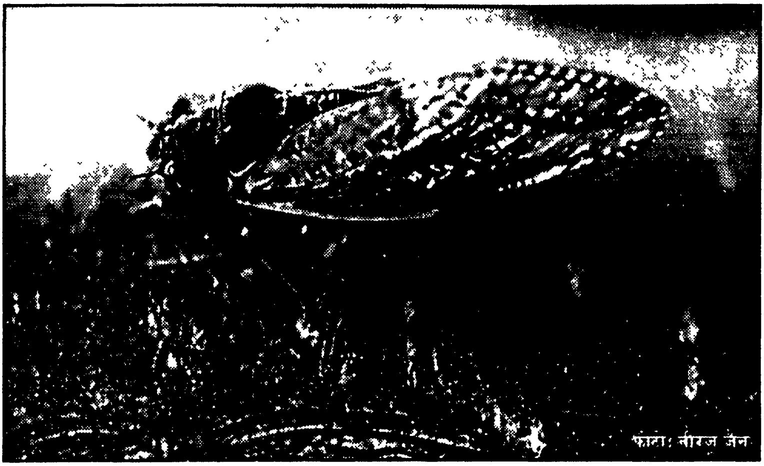

सिकाडा कीटों का जीवन चक्र काफी लंबा होता है। मादा सिकाडा पेड़ों पर अंडे देती है। अंडे फूटने के बाद लार्वा उन पेड़ों से टपककर नीचे ज़मीन में घुस जाते हैं। ज़मीन के अंदर ये नन्हें कीट जड़ों का रस चूसकर अपना पेट भरते हैं। सिकाडा की अलग-अलग प्रजातियों में कायांतरण की प्रक्रिया से गुज़रते हुए वयस्क बनने में अलग-अलग अवधि लगती है – एक साल से लेकर सत्रह साल तक। कुछ प्रजातियां एक साल में वयस्क होती हैं तो कुछ प्रजातियां 13वें साल वयस्क हो जाती हैं और कोई 17 साल में। प्रजातियों के हिसाब से सिकाडा 13वें बसंत में या 17वें बसंत में ज़मीन से एक साथ बाहर निकलने लगते हैं। जैसे सन् १९९८ को सिकाडा वर्ष कहा गया क्योंकि 13 वें साल वयस्क होने वाले सिकाडा 1998 में ज़मीन से एक साथ बाहर निकले थे।

यहां सिकाडा और बांस में काफी समानता दिखाई देती है। क्योंकि बांस में भी एक प्रजाति के पौधे एक खास अवधि के बाद एक साथ बौराते हैं। लेकिन सिकाडा के साथ जुड़ा है उनका मधुर संगीत जिसे सिकाडा संगीत कहा जाता है। इस संगीत को नर सिकाडा ही उत्पन्न कर पाता है। इस संगीत का उद्देश्य मादा को रीझाना होता है। **ऊपर**: सिकाडा का फोटो ग्राफ। **नीचे**: सिकाडा की बाल्यावस्था का रेखाचित्र। कायांतरण के अंतिम दौर के बाद वह वयस्क रूप में दिखेगा।

सिकाडा की बाल्यावस्था

नर सिकाडा

(अमरीका के कुछ दक्षिणी प्रांतों को छोड़कर जहां पर एक ऐसा ही सिकाडा की अन्य प्रजातियों का समूह पाया जाता है जो हर 13 साल में बाहर आते हैं)। फिर कुछ हफ्तों के दौरान ही लाखों परिपक्व बच्चे ज़मीन से बाहर निकलते हैं, वयस्क बनते हैं, समागम करते हैं, बच्चे देते हैं, और मर जाते हैं। सबसे विस्मयकारी बात तो यह है कि केवल एक नहीं, बल्कि चक्रीय सिकाडा की तीन प्रजातियां ठीक उसी अंतराल पर एकदम एक साथ निकलती हैं। अलग-अलग इलाके ज़रूर आगे-पीछे (आउट ऑफ फेज़) हो सकते हैं – शिकागो के आसपास के सिकाडा उसी साल में नहीं निकलते जिस साल न्यू इंग्लेंड में। परन्तु प्रत्येक झुंड के लिए 17 वर्षीय चक्र अचल रहता है (दक्षिण में 13 वर्षीय चक्र) – तीनों प्रजातियां उसी समय एकसाथ बाहर निकलती हैं। जेन्ज़न को स्पष्ट है कि भौगोलिक व जैविक विभिन्नता के बावजूद सिकाडा व बांस जैव-विकास की एक समान पहेली प्रस्तुत करते हैं। उसका कहना है कि हाल ही के कुछ अध्ययनों के अनुसार, "इन कीटों व बांस के बीच कोई विशेष गुणात्मक विभेद नहीं है, शायद इसके अलावा कि वे समय की गिनती कैसे करते हैं।"

क्यों? क्यों? क्यों?

जैव-विकासवादियों के रूप में हम इसी सवाल का जवाब ढूंढते हैं 'क्यों?' ऐसी अदभुत समकालिक्ता (सिंक्रोनिटी) का विकास क्यों, और लैंगिक प्रजनन के बीच का अंतराल इतना लंबा क्यों? जैसे कि मैंने कुछ मक्खियों में मातृहत्या के व्यवहार की चर्चा करते हुए अपने एक लेख में तर्क रखा था कि प्राकृतिक चुनाव (जैव विकास) के सिद्धांत को सबसे ज़्यादा समर्थन तब मिलता है जब हम ऐसी घटनाओं को संतोषप्रद ढंग से समझा पाते हैं जो अन्यथा अत्यन्त ही विचित्र या निरर्थक लग रही हों।

इस किस्से में हमारा आमना-सामना एक ऐसी समस्या से होता है जिसमें कि बरबादी की बू आती है (क्योंकि बीजों से संतृप्त ज़मीन पर इनमें से बहुत ही कम बीज अंकुरित हो पाएंगे)। फूलों के एक-साथ लगने या सिकाडा के एक-साथ बाहर निकलने से ऐसा लगता है कि मानो संपूर्ण प्रजाति में एक तरह की व्यवस्था व तालमेल हो। परन्तु डार्विन के विकासवाद के तहत 'प्रत्येक सदस्य के अपने हित को आगे बढ़ाने के आगे व इससे ऊपर कोई भी सिद्धांत नहीं है' – यानी कि अपनी जीन का आने वाली पीढ़ियों में प्रतिनिधित्व। हमें इस सवाल पर गौर करना होगा कि इस तरह के समकालिक (एक समय पर, एक साथ होने वाले) प्रजनन से एक सिकाडा या बांस के एक पौधे को क्या फायदा होता है।

बांस की विभिन्न प्रजातियों में बहार आने में 15 से 120 वर्षों का समय गुज़र जाता है। बांस की एक प्रजाति में आखिरकार बहार आ ही गई है और वह फूलों से लद गया है। यहां फूलों से बौराई बांस की एक टहनी।

समस्या कुछ उसी तरह की है जो कि प्रख्यात अर्थशास्त्री एडम स्मिथ के सामने आई जब उसने यह सिद्धांत सामने रखा कि हस्तक्षेप न करने की नीति ही सामंजस्यपूर्ण अर्थव्यवस्था तक पहुंचने का सबसे पक्का तरीका है। स्मिथ का मानना था कि आदर्श अर्थव्यवस्था व्यवस्थित व संतुलित दिखती है, परन्तु यह अपने आप ही उभर आएगी अगर बहुत सारे ऐसे लोग साथ रहें जिनमें से हर कोई बस एक ही रास्ता अख्तियार कर रहा हो – अपने खुद के हित का मार्ग। एडम स्मिथ का तर्क था कि ऐसी सामूहिक व्यवस्था बनते देखकर ऐसा लगने लगता है मानो कि कोई अन्य शक्ति इसे दिशा दे रही हो।

चूंकि डार्विन ने अपने प्राकृतिक चुनाव के सिद्धांत को विकसित करते हुए एडम स्मिथ की इस सोच को प्रकृति पर लागू किया था इसलिए हमें भी यही ढूंढना होगा कि इस व्यवस्था, इस हारमनी से प्रत्येक सदस्य को क्या लाभ होता है। एक सिकाडा या एक बांस को क्या फायदा मिलता है अगर वे लंबे अंतराल पर और एक-साथ, एक ही समय पर प्रजनन करें?

अस्तित्व के लिए संघर्ष?

इसकी सबसे संभव व्याख्या को समझ पाने के लिए सबसे पहले तो हमें यह समझ लेना होगा कि मनुष्यों से संबंधित प्रक्रियाएं अक्सर हमें अन्य प्राणियों के संघर्ष समझने के लिए

उपयुक्त मॉडल नहीं उपलब्ध करवातीं। मानव एक धीमे बढ़ने वाला प्राणी है। हम बहुत ही कम संख्या में पैदा होने वाली व देरी से वयस्क होने वाली संतानों में बहुत ऊर्जा लगाते हैं। हमारी जनसंख्या का नियंत्रण बड़े पैमाने पर ज़्यादातर शिशुओं की मृत्यु से नहीं होता। जबकि बहुत से जीव-जंतु 'अस्तित्व के संघर्ष' में अलग ही रणनीति अपनाते हैं – वे बहुत से बीज या अंडे पैदा करते हैं ताकि उनमें से कुछ तो जीवन के इस शुरुआती संघर्ष में से बच कर निकल सकें। अक्सर इनका नियंत्रण परभक्षी शिकारियों (प्रीडेटर) द्वारा होता है, और इनकी जैवविकास के दौरान विकसित सुरक्षा की रणनीति इस तरह की होनी होगी ताकि उनके मृत्यु के मुंह में जाने की संभावना कम हो। कोई भी नई व्याख्या सुझाते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि बहुत से जीव-जंतुओं को सिकाडा एवं बांस के बीज अत्यन्त स्वादिष्ट लगते हैं।

प्राकृतिक इतिहास, आम तौर पर, शिकारी से बचने के विभिन्न तरह के अनुकूलन का किस्सा होता है। कुछ छिप जाते हैं, कुछ बेस्वाद होते हैं, कुछ में कांटे या कठोर कवच विकसित हो जाते हैं, कुछ अपने विषाक्त रिश्तेदारों जैसे दिखने लगते हैं; ऐसी एक अंतहीन सूची तैयार की जा सकती है, जो प्रकृति की विविधता का एक उत्कृष्ट नज़ारा प्रस्तुत करती है। बांस के बीज व सिकाडा एक असामान्य रणनीति अख्तियार करते हैं: वे स्पष्ट तौर पर व आसानी से उपलब्ध होते हैं, परन्तु बहुत ही लंबे अंतरालों के बाद और इतनी बड़ी संख्या में कि शिकारी भरपूर कोशिश के बावजूद उन सबको खत्म नहीं कर सकते। जैव-विकासवादी सुरक्षा के इस तरीके को 'शिकारी संतृप्तण' (प्रीडेटर सेटियेशन) कहते हैं।

इस तरीके की कारगर रणनीति के लिए दो तरह के अनुकूलन ज़रूरी हैं। पहला, उनके बाहर निकलने या प्रजनन में एकदम सटीक सामंजस्य यानी समकालिकता होनी चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि केवल कुछ समय के लिए एकदम बाढ़-सी आ जाए। यह भरमार बहुत जल्दी-जल्दी नहीं आनी चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर शिकारियों के अपने जीवन-चक्र में इस विपुलता से मेल खाने वाले बदलाव आ सकते हैं। अगर बांस में हर साल फूल आएं तो संभव है कि बीज खाने वालों में ऐसे बदलाव आ जाएं कि इस चक्र का ख्याल रखते हुए, उनमें उसी समय बहुतेरे बच्चे पैदा हों जब बीजों की प्रचुरता हो। परन्तु अगर फूल लगने का अंतराल शिकारी के जीवन-चक्र से कहीं लंबा हो तो ऐसे चक्र की खबर रख पाना शिकारी के लिए मुमकिन न होगा। (सिवाय एक

विशेष जीव के जो अपने इतिहास का लेखा-जोखा रखता है!) प्रत्येक बांस एवं सिकाडा के संदर्भ में एकसाथ प्रजनन का फायदा स्पष्टत: समझ में आता है – जो भी इस कदमताल से बाहर होगा तुरन्त शिकारी के मुंह में जा पहुंचेगा (इस तरह के भूले-भटके सिकाडा कभी-कभी बीच के सालों में निकल आते हैं परन्तु वे कभी भी अपने पैर जमा नहीं पाते)।

'शिकारी संतृप्तण' की यह परिकल्पना, चाहे अभी तक यह सिद्ध नहीं हुई हो, एक सफल व्याख्या के सब प्राथमिक मापदंड ज़रूर पूरी करती है; यह ऐसे कई अवलोकनों के बीच में समन्वय बिठाती है जो अन्यथा एक-दूसरे से स्वतंत्र दिखते हैं, और बांस व सिकाडा के उदाहरण में तो विचित्र भी। उदाहरण के लिए, हम जानते हैं कि बांस के बीज कई प्राणियों को अत्यन्त स्वादिष्ट लगते हैं, जिनमें कि लंबी उम्र (लंबे जीवनचक्र) वाले कई रीढ़धारी भी हैं; इसलिए बांस के बीजों का यह चक्र 15 या 20 साल से छोटा न होना समझ में आता है। हमें यह भी मालूम है कि इस तरह एकसाथ बीज गिरने से प्रभावित इलाके में बीजों की भरमार हो सकती है। जेन्ज़न ने दर्ज़ किया है कि एक जगह पर जनक पेड़ के नीचे बीजों की 6 इंच मोटी चादर-सी बिछ गई थी। मालागासी बांस की दो प्रजातियां सामूहिक बहार के दौरान प्रति हेक्टेयर लगभग 50 किलोग्राम बीज पैदा करती हैं – एक लाख हेक्टेयर के विशाल क्षेत्र में।

अंक भी महत्व रखते हैं क्या?

सिकाडा की तीन प्रजातियों के बीच में सामंजस्य व समकालिकता अत्यन्त प्रभावशाली है – विशेषतौर पर इसलिए भी क्योंकि अलग-अलग जगहों पर उनका ज़मीन से बाहर निकलने (अवतरित होने) का साल अलग-अलग होता है, जबकि ये तीनों प्रजातियां हर क्षेत्र विशेष में एक साथ निकलती हैं। परन्तु मैं सबसे ज़्यादा प्रभावित हूं इन चक्रों की अवधि से। 13 व 17 साल वाले सिकाडा ही क्यों पाए जाते हैं? 12, 14, 15, 16 व 18 साल वाले चक्र क्यों नहीं होते? 13 व 17 दोनों में एक समान गुण है। ये दोनों आंकड़े किसी भी शिकारी के जीवनचक्र से तो लंबे हैं ही, परन्तु वे अभाज्य संख्याएं भी हैं (ऐसी संख्याएं जो अपने से छोटी किसी भी पूर्णांक संख्या से पूर्णांक में विभाजित नहीं की जा सकती)। सिकाडा के कई संभावित शिकारियों के 2 से 5 साल के जीवनचक्र होते हैं। ये चक्र सिकाडा की प्रचुरता से तय नहीं होते (क्योंकि अक्सर इन शिकारियों की संख्या ऐसे सालों में चरम पर पहुंचती है जिन सालों में सिकाडा नहीं निकलते)। परन्तु जिन

सालों में ये दोनों चक्र एक-दूसरे से मेल खा जाएंगे उस समय सिकाडा का बड़े पैमाने पर भक्षण होगा। एक ऐसे शिकारी का उदाहरण लेते हैं जिसकी संख्या हर पांच साल में बढ़ जाती है; अगर सिकाडा का चक्र पंद्रह साल का होता तो हर बार अवतरित होने पर वे शिकारियों के झपट्टे में आ जाते। बड़ी अविभाज्य संख्याओं के चक्रों के ज़रिए सिकाडा इस तरह की संभावना को बहुत ही कम कर देते हैं (इस उदाहरण में हर 5 गुणा 17, यानी 85 साल में)। तेरह व सत्रह साल के चक्र किसी भी छोटे चक्र से पकड़े नहीं जा सकते।

जैसा कि डार्विन ने कहा है, अपना अस्तित्व बरकरार रखना ही ज़्यादातर जीव-जंतुओं के लिए संघर्ष का मसला है। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए पंजे और दांत ही हथियार हों यह ज़रूरी नहीं है, प्रजनन के पैटर्न भी उतने ही कारगर सिद्ध हो सकते हैं। यदाकदा की प्रचुरता भी सफलता का एक रास्ता हो सकती है। कभी कभी एक ही टोकरी में अपने सब अंडे रख देना भी फायदेमंद हो सकता है – परन्तु इस बात का ख्याल रखना होगा कि अंडे बहुत सारे हों और ऐसा कभी-कभार ही किया जाए।

इस लेख में इस्तेमाल किए गए चित्र मूल लेख में नहीं थे।

स्टीफन जे. गूल्ड: प्रसिद्ध जीवाश्मविद और विकासवादी जीव-वैज्ञानिक स्टीफन जे. गूल्ड का बचपन न्यूयॉर्क में गुज़रा। एंटियोक कॉलेज से स्नातक हुए और कोलंबिया विश्वविद्यालय मे पी.एच.डी. की। वे हार्वर्ड विश्वविद्यालय में भूविज्ञान और प्राणिविज्ञान के प्रोफेसर पद पर कार्यरत थे। उन्होंने विकासवाद, विज्ञान का इतिहास, जीवाश्म विज्ञान जैसे अनेक विषयों पर निबंध लिखे हैं। उनकी कुछ प्रमुख किताबें हैं – द मिसमेज़र ऑफ मेन, हेन्स टीथ एंड हॉर्सिस टोज़, द फ्लेमिंगोज़ स्माइल, वंडरफुल लाइफ, एवर सिन्स डार्विन आदि।

अनुवाद: राजेश खिंदरी: संदर्भ पत्रिका से संबद्ध।

यह लेख 'एवर सिन्स डार्विन' किताब से साभार लिया गया है और अस्सी के दशक में लिखा गया था। सिकाडा के बारे में और जानकारी के लिए संदर्भ के अंक 22–23 में लेख 'सिकाडा का मधुर संगीत' और अंक 24–25 में प्रकाशित लेख 'सिकाडा किलर' देखिए।

कई बार डॉक्टर घुटने के जोड़ पर रबर की हथौड़ी से हल्की चोट कर दर्द या दबाव के अहसास को पता करने की कोशिश करते हैं – दबाव का अहसास पेशियों, सेंसरी न्यूरॉन, मेरुदंड से होता हुआ मस्तिष्क तक पहुंचता है। इस दर्द या दबाव से राहत के लिए संकेत वापस संबंधित पेशी तक पहुंचा दिए जाते हैं। कभी-कभी संकेतों के आदान-प्रदान के दौरान पेशियां गफलत में फंस जाती हैं कि उन्हें करना क्या है?

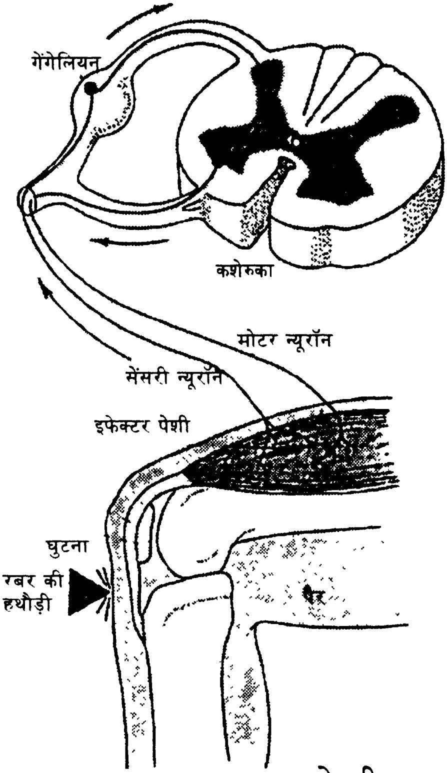

तंत्रिका तंत्र में द्वंद्व

जे. बी. एस. हाल्डेन

जब हम कोहनी के जोड़ को अचानक सीधा करते हैं तो क्या होता है? जैसे गेंद फेंकते समय। सबसे सीधी-सादी बात तो यह होती है कि एक मांसपेशी सिकुड़ती है – कोहनी के जोड़ को सीधा करते समय हमारी ट्राइसेप्स मांसपेशी में संकुचन होता है।

परन्तु बात इतनी-सी ही नहीं है। यदि इतनी ही होती तो इस गति का अंजाम एक ज़ोरदार झटके के रूप में सामने आता। यह झटका इतना ज़ोरदार

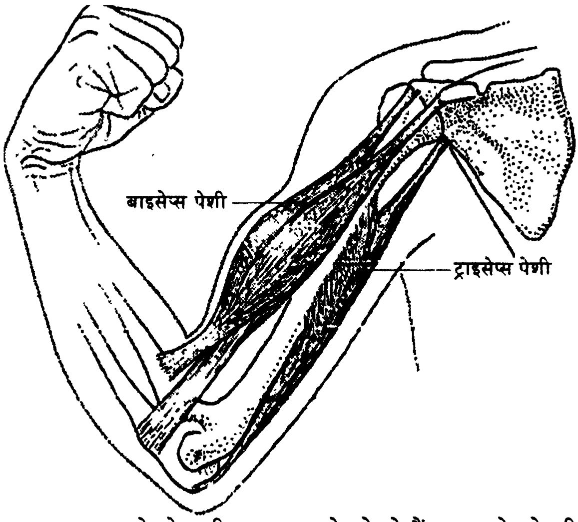

हाथ को मोड़ना: इस तरह से रोज़ ही हम हाथ को मोड़ते हैं। हाथ को कोहनी के जोड़ से मोड़ने और सीधा करने में बाइसेप्स पेशी और ट्राइसेप्स पेशी की महत्वपूर्ण भूमिका है। हाथ को मोड़ते समय बाइसेप्स पेशियों में संकुचन होता है और ट्राइसेप्स में फैलाव होता है। यदि मुड़े हुए हाथ को सीधा करना हो तो ट्राइसेप्स पेशियों में संकुचन और बाइसेप्स में फैलाव होता है।

होता कि कोहनी में मोच आ जाती। हो सकता है कोई हड्डी ही टूटने की नौबत आ जाती। कोहनी को सीधा करने की पूरी क्रिया में एक अन्य मांस पेशी- बाइसेप्स - धीरे-धीरे शिथिल भी होती है। बाइसेप्स कोहनी को मोड़ने वाली मांसपेशी है। यह शिथिल तो होती है, मगर पूरी तरह नहीं। इसीलिए यह गति इतनी झटकेदार नहीं होती। जब हम पूरी तरह विश्राम की स्थिति में होते हैं तब भी हमारी मांसपेशियां कुछ हद तक संकुचन की स्थिति में ही होती हैं। उनको हमारे मेरूरज्जु से आवेग प्राप्त होते रहते हैं – सिर व कुछ आंतरिक अंगों से संबंधित मांसपेशियों को ये आवेग सीधे मस्तिष्क से मिलते हैं। किसी भी हरकत में मांसपेशियों के एक समूह में संकुचन में वृद्धि के बराबर ही महत्व इस बात का होता है कि किसी अन्य मांसपेशी समूह के संकुचन में कमी आती है। अर्थात सारी शारीरिक स्थितियां और हरकतें दो परस्पर विपरीत प्रक्रियाओं के संतुलन का परिणाम होती हैं। शेरिंग्टन इन परस्पर विरोधी मांस-पेशियों को परस्पर विपरीत तंत्रिका

संकेत कहते हैं। इस तरह के विपरीत संकेत भेजने के लिए हमें सचेत होकर सोच-विचार नहीं करना पड़ता। हरकत चाहे अनैच्छिक हो या ऐच्छिक (Reflex or Voluntary) हो, यह प्रक्रिया तो होती ही है। इस प्रक्रिया के लिए ज़िम्मेदार तंत्रिका कोशिकाएं (न्यूरॉन) ज़्यादातर मेरूरज्जू में होती हैं।

संदेशों की आवाजाही

इस प्रक्रिया में गड़बड़ भी हो सकती है। हमारे निचले जबड़े को बंद करने वाली मांसपेशियां बहुत शक्तिशाली होती हैं जबकि खोलने वाली पेशियां अपेक्षाकृत दुर्बल होती हैं। जब हम जबड़ा खोलना चाहते हैं, तब हमें न सिर्फ इसे खोलने वाली दुर्बल पेशियों को संकुचित करना पड़ता है बल्कि बंद करने वाली शक्तिशाली पेशियों को ढीला भी करना होता है। किन्तु टिटेनस, स्ट्रायक्नीन विषाक्तता एवं अन्य कुछ स्थितियों में यह क्रिया गड़बड़ हो जाती है। जबड़ा बंद करने वाली मांसपेशियों को सिकुड़ने का संकेत देने वाली तंत्रिका कोशिकाओं को आदेश देने वाले आवेगों को रोकने का काम नहीं हो पाता, ये मांसपेशियां पहले से भी ज़्यादा काम करने लगती हैं। जितना ही आप जबड़े को खोलना चाहेंगे, वह उतना ही अधिक भिंचता जाएगा। खोलने व बंद करने वाली दोनों ही पेशियां एक-दूसरे के खिलाफ काम करने लगती हैं। बंद करने वाली पेशियां ज़्यादा ताकतवर हैं और वे जीत जाती हैं। टिटेनस में इसी कारण से जबड़ा कसकर बंद हो जाता है।

हर युद्ध अपनी विभीषिका के रूप में कई ऐसे बदकिस्मत मर्द-औरत छोड़ जाता है जिनके तंत्रिका तंत्र विभाजित हो चुके हैं। इन लोगों में यह अध्ययन किया जा सकता है कि एक हिस्से के बगैर दूसरा कैसे काम करता है। यदि मेरूरज्जु पीठ के बीच से कट जाए तो पैर और पेट वाले हिस्से असंवेदी हो जाते हैं, व्यक्ति इन्हें अपनी मर्ज़ी से हिला-डुला नहीं सकता। इन अंगों और दिमाग के बीच संदेशों की आवाजाही नहीं होती। मगर मेरूरज्जु का कटा हुआ हिस्सा अनुवर्ती क्रियाओं (Reflexes) को अंजाम दे सकता है। यदि ऐसे व्यक्ति के तलुए में गुदगुदी की जाए तो वह पैर हट जाता है, हालांकि उस व्यक्ति को इसके बारे में कुछ पता नहीं चलता।

इसी प्रकार से मस्तिष्क का निचला हिस्सा सांस लेने, निगलने और तापमान नियंत्रण जैसे काम करता रह सकता है जबकि ऊपरी हिस्सा अक्रिय हो चुका हो। चोट और बीमारियों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करके हम दिमाग के ऊपरी हिस्सों के काम-काज को समझ सकते हैं। ये हिस्से अन्य पशुओं की बनिस्बत इंसानों में ज़्यादा विकसित होते हैं। इस तरह के

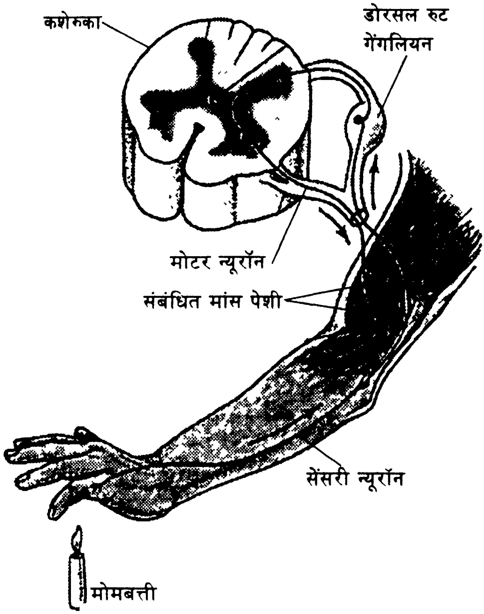

आग से, मोमबत्ती से हाथ जलने का अनुभव हमारे लिए नया नहीं है। जैसे ही हाथ मोमबत्ती की लौ के सम्पर्क में आता है गरमाहट की सूचना सेंसरी न्यूरॉन के मार्फत मेरुदंड तक पहुंचा दी जाती है। हाथ की वे मांसपेशियां जो हाथ को पीछे हटाती हैं, उन्हें मेरुदंड हाथ को पीछे खींचने के निर्देश देता है। लेकिन मान लीजिए आप किसी और जोश में हैं और अपना हाथ जलाने पर ही आमादा हैं तो मेरुदंड के निर्देश को निरस्त करने के लिए सेंट्रल नर्व सिस्टम से मोमबत्ती पर हाथ बनाए रखने के आदेश हाथ की मांस पेशियों को प्राप्त होते हैं।

अध्ययनों के परिणाम काफी आश्चर्य-जनक रहे हैं। वैसे तो हम उम्मीद करते हैं कि यदि दिमाग का एक हिस्सा नष्ट हो जाए, तो कई मांसपेशियां काम करना बंद कर देंगी। ऐसा होता भी है, मगर कभी-कभी ये मांसपेशियां अति-सक्रिय हो जाती हैं। कुछ लकवे (पक्षाघात) ऐसे होते हैं जिनमें टांगों की मांसपेशियां स्थाई तौर पर खड़े होने की स्थिति में संकुचित होकर जड़ हो जाती हैं। वास्तव में हुआ यह है कि खड़े होने के साथ जो अनुवर्ती क्रिया सामान्य रूप से होती है, वह बेकाबू हो गई है। मस्तिष्क की कुछ बीमारियां ऐसी होती हैं जिनमें मरीज़ स्थिर नहीं रह पाता। वैसे भी बुज़ुर्ग लोगों में हाथ कांपना तो एक मामूली बात है।

अनुवर्ती क्रियाओं पर नियंत्रण

जब दिमाग के ऊपरी हिस्से ठीक से काम करें तो वे निम्न तीन में से कोई एक भूमिका निभा सकते हैं: वे उन अनुवर्ती क्रियाओं को रोक सकते हैं जो सामान्यत: निचले भाग कर डालते; वे इन क्रियाओं को नियंत्रित ढंग से चलने दे सकते हैं, या वे निचले भाग को दरकिनार करके पेशीय

क्रियाओं को अंजाम दे सकते हैं। मगर तब भी कई सारे काम तो मेरूरज्जु द्वारा ही किए जाते हैं – जैसे एक मांसपेशी के खिंचते समय दूसरी को ढीला छोड़ना। हमारे अधिकांश सामान्य क्रियाकलाप तो अनुवर्ती क्रियाएं ही हैं जिन्हें दिमाग के ऊपरी हिस्से के निर्देशन में किया जाता है। यदि आप किसी कुत्ते को गुदगुदी करें तो वह इससे संबंधित अनुवर्ती क्रिया को अपने भरोसे छोड़ देता है मगर यदि कोई कीड़ा उसे परेशान कर रहा हो, तो वह नियंत्रित ढंग से सही जगह खुजा लेगा। जब आप सपाट ज़मीन पर चलते हैं तो ज़्यादा चिंता नहीं करते, हर कदम आपके पैरों और टांगों से मिलने वाले तंत्रिका आवेग की अनुवर्ती क्रिया है और आप इसके बारे में सोचते तक नहीं। किन्तु ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर आप प्रत्येक अनुवर्ती क्रिया पर सचेत नियंत्रण रखते हैं।

दिमाग के जिन हिस्सों की गतिविधि के प्रति हम सचेत रहते हैं उनके परस्पर संबंध भी इसी तरह के हैं। पूरी तरह सचेत किसी व्यक्ति के दिमाग की सतह को विद्युत के माध्यम से उत्तेजित किया जा सकता है। इस तरह के उद्दीपन नाना प्रकार की संवेदनाएं उत्पन्न करते हैं और विभिन्न अनैच्छिक हरकतों को जन्म देते हैं। मगर इनसे दर्द कभी पैदा नहीं होता। दर्द तथा क्रोध जैसी आदिम भावनाओं से संबंधित हिस्से दिमाग में अंदर की ओर होते हैं, सतह से काफी दूर। कई मायनों में अच्छे आचरण का मतलब यही होता है कि जब ज़रूरी हो दिमाग के इन हिस्सों की गतिविधि पर काबू रखा जाए और ज़रूरी होने पर उन्हें खुला छोड़ दिया जाए। कई मौके ऐसे होते हैं जब हमें अपनी यौन भावनाओं पर अंकुश लगाना होता है, जबकि कुछ मौकों पर इन्हें खुली छूट देकर हम ठीक ही करते हैं; अन्यथा मानव जाति का सफाया ही हो जाएगा। कई बार हमें अपने गुस्से को काबू में रखना होता है, मगर नियंत्रित क्रोध अन्याय के खिलाफ सबसे सशक्त हथियार भी है।

दिमाग के विभिन्न सचेत हिस्सों का आपसी संबंध लगभग वैसा ही है जैसा किसी सचेत व अचेत हिस्से का। मसलन, जब कोई तैराक या गायक अपनी सांस पर नियंत्रण करता है। एक सामान्य नियम यह है कि जब तक अनुवर्ती क्रियाएं सुचारू ढंग से चलती रहती हैं, हम उनके प्रति सचेत नहीं होते। जैसे ही दो अनुवर्ती क्रियाओं के बीच कोई तकरार होती है, हम सचेत होकर निर्णय करते हैं। मसलन, आमतौर पर चबाने और निगलने का काम अचेतन ढंग से चलता है मगर कोई कंकड़ आया या कबाब में हड्डी आते ही हम उस पर ध्यान देते हैं। यहां तक कि अत्यंत हुनर वाले काम भी अभ्यास के साथ स्वचालित ढंग

से होने लगते हैं। इस ढर्रे में कोई गड़बड़ होने पर ही चेतना और इच्छा की नींद टूटती है।

हम तंत्रिका को भी तभी समझ पाएंगे, जब हम यह समझ लें कि इसके विभिन्न हिस्सों के बीच टकराव न सिर्फ सामान्य है, बल्कि निहायत ज़रूरी भी है।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892-1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी। विकास (Evolution) के सिद्धांत को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान। विख्यात विज्ञान लेखक। उनके निबंधों का एक संकलन 'ऑन बीइंग द राइट साइज़' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत निबंध 'वॉट इज़ लाइफ' नामक संकलन से लिया गया है।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान लेखन एवं अनुवाद भी करते हैं।

भूलभुलैया में मेंढक

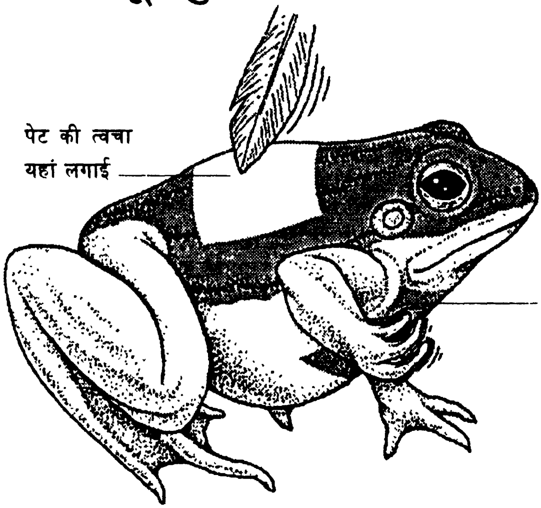

उटाह विश्वविद्यालय के मार्क्स जेकोबसन और उनके सहयोगियों ने तंत्रिका तंत्र को समझने के लिए एक दिलचस्प प्रयोग किया। उन्होंने एक मेंढक की पीठ और पेट की त्वचा से एक-एक चौकोन टुकड़ा

निकाला। अब त्वचा के इन टुकड़ों की आपस में अदला-बदली कर दी। यानी पेट की त्वचा वाला टुकड़ा पीठ पर प्रत्यारोपित (ट्रांसप्लांट) किया गया और पीठ की त्वचा वाला टुकड़ा पेट पर लगा दिया। जब त्वचा के ये दोनों टुकड़े खुद को इस नई परिस्थिति में ढालने की कोशिश कर रहे थे उस समय दोनों टुकड़ों के ग्राहियों (रिसेप्टर) ने दिमाग को पहले की तरह संदेश देने का काम भी जारी रखा।

इतना सब कुछ सफलता पूर्वक हो जाने के बाद जेकोबसन और उनके सहयोगियों ने मेंढक के साथ एक नया प्रयोग किया। उन्होंने एक पंख की मदद से मेंढक की पीठ के उस हिस्से को बार-बार गुदगुदाया जहां पेट की त्वचा प्रत्यारोपित की गई थी। हालांकि मेंढक की पीठ को गुदगुदाया जा रहा था लेकिन मेंढक बार-बार पेट पर प्रत्यारोपित त्वचा (जहां पीठ की त्वचा है) वाले हिस्से पर हाथ फेरकर राहत पाने की कोशिश करता रहा।

मेंढक के इस व्यवहार की व्याख्या इस तरह की गई कि प्रत्यारोपण के बाद नई परिस्थिति में ढलते त्वचा के टुकड़ों के साथ उनके ग्राही (रिसेप्टर) एक्सॉन के मार्फत दिमाग की ओर पेट की त्वचा के रूप में संदेश भेजते रहे और दिमाग भी उनकी पहचान पेट की त्वचा के रूप में करता रहा। इसलिए जब पीठ पर प्रत्यारोपित त्वचा को पंख से गुदगुदाया गया तो त्वचा के टुकड़े ने जो संदेश दिमाग की ओर भेजे, उसे दिमाग ने पेट की त्वचा से भेजे गए संदेश की तरह लिया और गुदगुदी से राहत पाने के लिए हाथ को पेट पर फेरने का संदेश दिमाग ने दिया। हाथ पेट के जिस हिस्से पर सहलाने का काम कर रहे थे वहां वास्तव में पीठ की प्रत्यारोपित त्वचा का टुकड़ा था जिस के पास पंख आया ही नहीं था।

मेंढक की यह भूलभुलैया कुछ समय ही चलती है। त्वचा के टुकड़े या कोशिकाएं एक बार नए परिवेश में खुद को व्यवस्थित कर लेते हैं उसके बाद वे नए समूह के एक हिस्से की तरह काम करते हैं। अपने भूतकालीन समूह को भूला देते हैं।

– विविध स्रोतों से संकलित

सवालीराम

साबुन क्या करता है?

पिछले अंक में मयंक गुप्ता, होशंगाबाद; ने सवालीराम से एक सवाल पूछा था कि अक्सर घर पर मुझे रोज़ नहाने के लिए कहा जाता है। साथ ही कहा जाता है साबुन लगाकर नहाओ, सारे जीवाणु मर जाएंगे। मैं यह जानना चाहता हूं कि साबुन कैसे बनाया जाता है, क्या साबुन से सच में जीवाणु मरते हैं?

जवाब: जब भी साफ-सफाई या नहाने की बात चले तो साबुन का ज़िक्र ज़रूर होता है। साबुनों में भी कई तरह के साबुन शामिल हैं: नहाने का, कपड़े धोने का, दाढ़ी के लिए, बाल सफा करने वाला, और भी न जाने कितने किस्म के साबुन हैं। लेकिन हम यहां सिर्फ नहाने के साबुन तक ही अपनी बात को सीमित रखेंगे।

सबसे पहले तो इस बात को समझना ज़रूरी है कि साबुन का प्रचलन पिछले 50-60 सालों में ज़्यादा बढ़ा है। इससे पहले भी लोग रेह, मिट्टी, रीठा, शिकाकाई आदि का इस्तेमाल नहाने में करते रहे हैं। लेकिन जब साबुन निर्माताओं ने साबुन, शैम्पू आदि का शरीर की साफ-सफाई से बढ-चढ़कर नाता जोड़ा तो साबुन एक खास ज़रूरत बनकर उभरा।

खैर, आपके सवाल पर आते हैं। हमारे शरीर पर कई किस्म के सूक्ष्मजीव, धूलकण, लवण, तेलीय पदार्थ, पसीना, मृत कोशिकाएं वगैरह जमा होते रहते हैं। नहाते समय साबुन इस्तेमाल करने से ये सब भी साबुन के साथ जुड़कर पानी के साथ धुल जाते हैं। जिन सामान्य साबुनों का हम रोज़ नहाने में इस्तेमाल करते हैं वे इन को तो पानी के साथ निकाल बाहर करते ही हैं, साथ ही कुछ सूक्ष्मजीवों को भी बहाकर शरीर से अलग कर देते हैं। कुछ सामान्य साबुनों में एंटि-सेप्टिक पदार्थ भी मिलाए जाते हैं। इन साबुनों से थोड़ी देर के लिए, कुछ सूक्ष्मजीवों से मुक्ति मिल सकती है लेकिन हमारी त्वचा पर तो सदैव सूक्ष्मजीवों की बहुत बड़ी भीड़ लगी रहती है।

कुछ ऐसे खास साबुन जिनमें ऐंटीबैक्टेरियल पदार्थ मिलाए गए हों, वे शरीर को संक्रमण रहित करने के साथ बैक्टेरिया को मार भी सकते हैं।

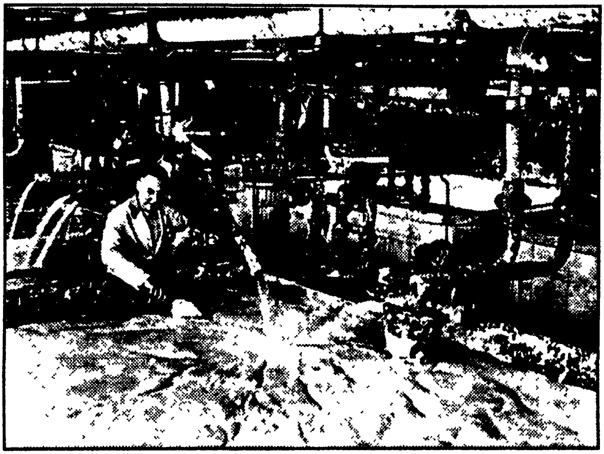

साबुन के कारखाने के भीतर का एक नज़ारा: तकनीकी रूप से थोड़ा पुराने किस्म का कारखाना। भाप के पाइप से जुड़े हुए स्टील के बड़े बर्तन में तेल और कास्टिक सोड़े को गर्म किया जा रहा है। कुछ घंटे तक गर्म करने के बाद दहीनुमा पदार्थ बनता है जिसका शुद्धिकरण करके साबुन को पृथक किया जाता है। तकनीकी परिवर्तनों के चलते साबुन बनाना अब कुछ घंटों का नहीं बल्कि मिनटों का काम हो चला है, लेकिन प्रक्रिया और सिद्धांत लगभग वही है।

परन्तु ऐसा करने की ज़रूरत कुछ खास परिस्थितियों में ही होती है जैसे कि डॉक्टर ऑप्रेशन से पहले कोशिश करते हैं कि उनकी त्वचा जीवाणुरहित हो ताकि रोगी को खतरा न हो। या फिर चमड़ी के कुछ विशेष रोगों में ऐसी सफाई की ज़रूरत पड़ सकती है।

वैसे भी हमारी त्वचा पर मौजूद बैक्टेरिया में से बहुत से हमारी सेहत के लिए हानिरहित हैं। और कुछ इस मायने में फायदेमंद भी, कि वे अपनी मौजूदगी से रोगजनक बैक्टेरिया को चमड़ी पर आसानी से पैर जमाने नहीं देते। इसलिए सामान्य नित्य-कर्म के लिए ऐसे पदार्थों की कोई ज़रूरत नहीं है जो हमारे शरीर पर रह रहे समस्त जीवाणुओं को नष्ट करने में सक्षम हों।

जहां तक सवाल है कि रोज़ नहाना चाहिए या नहीं? इस पर बहस से कोई लाभ नहीं है क्योंकि यह तो विभिन्न संस्कृतियों की परम्पराओं और लोगों के पास उपलब्ध पानी की मात्रा पर निर्भर करता है। एक ओर बर्फीले इलाके हैं जहां रोज़ स्नान का रिवाज नहीं है तो दूसरी ओर रेगिस्तानी इलाकों में कई जगह लोग हफ्ते में

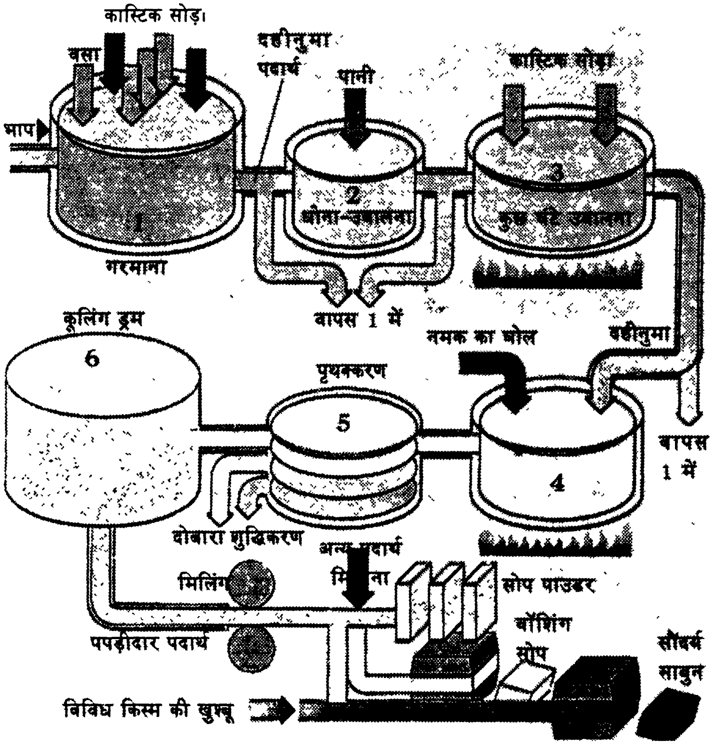

साबुन बनाना: कारखानों में साबुन तैयार करते समय विविध चरणों से गुज़रते हुए साबुन का निर्माण होता है। आकार, प्रकार, खुश्बू में अलग-अलग होने के बावजूद साबुन बनाने के लिए कास्टिक सोडा, वसा आदि को मिलाना, गर्म करना, धोना, शुद्धिकरण, ठंडा करना, मिलिंग आदि शामिल हैं। अंतिम चरण में अपने-अपने व्यवसायिक उत्पाद बनाने के लिए एवं मार्केटिंग की ज़रूरत के अनुसार साबुन में रंग, खुश्बू आदि के लिए अन्य पदार्थ मिलाए जाते हैं।

एक बार ही नहाते हैं परन्तु फिर भी हमारे-आपके जितनी ही सफाई से रहते हैं।

आइए साबुन बनाएं

अगली बात है साबुन कैसे बनाते हैं? हम यहां साबुन बनाने की जिस विधि की बात कर रहे हैं वह बड़े कारखानों वाली विधि नहीं है लेकिन सिद्धांत लगभग वही है। साबुन बनाने के लिए सोडियम या पोटेशियम हाइड्रॉक्साइड, तेल, इत्र, रंग, जैसे पदार्थों की ज़रूरत होती है।

नहाने के साबुन में आमतौर पर सोडियम हाइड्रॉक्साइड (कास्टिक सोड़ा) का इस्तेमाल किया जाता है। तेलों के लिए नारियल, महुआ, जैतून, अलसी, अंडी, बिनोले, निबोली, तिल का इस्तेमाल किया जाता है। तेलों के अलावा पशुओं की चर्बी (Fat) का इस्तेमाल भी किया जा सकता है।

रसायन विज्ञान की भाषा में इन तेलों को फैटी एसिड कहा जाता है। फैटी एसिड और कास्टिक सोड़े की परस्पर क्रिया से साबुन और ग्लिसरीन बनता है। यह रासायनिक क्रिया इस प्रकार है:

$$
\begin{array}{llcll}
CH_2COOR & & & NaOCOR & CH_2OH \\
| & & & + & | \\
CHCOOR' & + 3NaOH & \dashrightarrow & NaOCOR' \;+ & CHOH \\
| & & & + & | \\
CH2COOR'' & & & NaOCOR'' & CH_2OH
\end{array}
$$

वसा अम्ल   कास्टिक सोडा   साबुन   ग्लिसरीन

उपरोक्त क्रिया देखने में एकदम आसान लगती है लेकिन इसको सम्पन्न करवाने की विधि काफी लंबी है।

चित्र में साबुन बनाने की प्रक्रिया को कुछ चरणों में बांटने की कोशिश की गई है। पहले तेल या वसा, कास्टिक सोड़ा और कुछ अन्य पदार्थों को एक बड़े बर्तन में गर्म करते हैं। इस प्रक्रिया से बर्तन में दहीनुमा पदार्थ बनने लगता है जिसे अलग करके पानी से धोया जाता है, फिर इसे उबाला जाता है। कुछ समय के बाद इसे एक दूसरे बर्तन में लाया जाता है जहां इसमें नमक (Brine) मिलाया जाता है जिससे दहीनुमा पदार्थ से ग्लिसरीन को अलग किया जा सके। यहां तक आते-आते साबुनीकरण की प्रक्रिया पूरी हो चुकी होती है। इसके बाद शुद्ध साबुन और अशुद्ध पदार्थों को अलग कर लेते हैं। इन अशुद्ध पदार्थों को दोबारा साबुनीकरण की प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है।

उसके बाद शुद्ध साबुन को ठंडा किया जाता है जिससे पपड़ीनुमा पदार्थ मिलता है। साथ ही दो विकल्प भी मौजूद हैं – यदि साधारण वॉशिंग पाउडर या साबुन की बट्टी बनानी है तो साबुन में सोडियम कार्बोनेट और अन्य पदार्थ मिलाने होंगे। यदि नहाने का साबुन बनाना है तो साबुन में मनमोहक रंग, खुश्बू आदि मिलाते हैं जिससे साबुन में मोगरे-केवड़े से लेकर नीम-तुलसी तक की खुश्बू आ सकती है।

इन दिनों साबुन उद्योग में पेट्रोकेमिकल्स (डिटरजेंट) का इस्तेमाल काफी हो रहा है इसलिए हमारे आसपास शैम्पू, लिक्विड सोप, लिक्विड डिटरजेंट जैसे सफाई के कई सारे साधन मौजूद हैं।

इस बार सवालीराम का सवाल देखिए पृष्ठ क्रमांक 44 पर

सवालीराम

इस बार का सवाल: सवालीराम से इस बार यह सवाल पूछा गया है कि जैसे गाय, भैंस और इसी तरह के अन्य प्राणी आसानी से घास खा सकते हैं और आसानी से पचा पाते हैं तो मनुष्य ऐसा क्यों नहीं कर पाता?

अभिजीत सराठे
कक्षा ९वीं, बैतूल

शायद आपने भी गौर किया होगा कि गाय-भैंस जैसे पशु घास, भूसा आदि मज़े से खाते हैं। इन प्राणियों के पाचन तंत्र में ऐसा क्या खास है जो इंसानी पाचन तंत्र में नहीं है?

आपने जवाब हमारे पास जल्द-से-जल्द भेजिए।

ज़रा सिर खुजलाइए

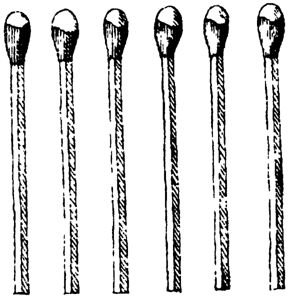

इस बार का सवाल: ऊपर बने चित्र को देखिए। यहां 6 माचिस की तीलियां दी गई हैं। इन तीलियों की मदद से आपको 4 संगत (एकरूप) समबाहु त्रिभुज बनाने हैं। तीलियों को तोड़ना-मोड़ना नहीं है।

यदि सवाल कठिन लगे तो साथ में फेविकोल ज़रूर रखिए शायद काम आ जाए। अपने जवाब जल्द हमारे पास भेजिए। हमारा पता तो आपको मालूम ही है।

संदर्भ मराठी और गुजराती में

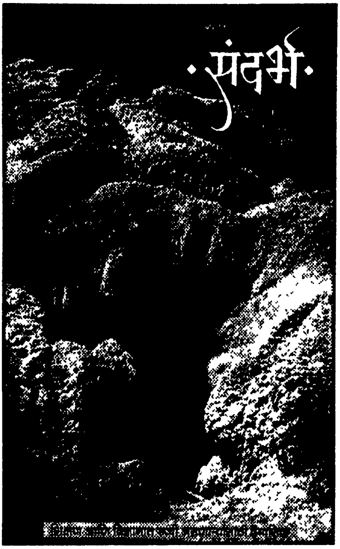

मराठी संदर्भ की सदस्यता दरें इस प्रकार हैं
एक प्रतिः 20 रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्कः 125 रुपए

गुजराती संदर्भ का नमूना अंक प्रकाशित हो चुका है।
वार्षिक सदस्यता शुल्कः 150 रुपए

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेज सकते हैं।

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें।

नचिकेता ट्रस्ट
21 महालक्ष्मी सोसायटी
धरमपुर, ज़िला वलसाड
गुजरात 396050

संदर्भ, द्वारा पालकनीती
अमृता क्लिनिक, संभाजी पुल कोपरा
कर्वे रोड़, पुणे, पिनः 411004
फोनः 5441230

ज़रा सिर खुजलाइए

पिछली बार का सवालः आपके पास किसी टूटी हुई जंज़ीर के पांच टुकड़े हैं। इन पांचों टुकड़ों को जोड़कर आपको दुबारा लंबी जंज़ीर बनाना है। वैसे सरसरी नज़र से देखा जाए तो हल काफी आसान दिखता है, बस कुछ कड़ियों को खोल लीजिए और सभी टुकड़ों को जोड़कर जंज़ीर बना लीजिए। तो देर किस बात की, कड़ियां खोल लीजिए। बस एक बात का ध्यान रखना है कि कम-से-कम कड़ियां खोलनी हैं, हो सके तो चार से भी कम।

इस सवाल का एक जवाब यह है कि जंज़ीर के पांच टुकड़ों में से एक टुकड़े की सभी तीनों कड़ियों को खोल लीजिए और इन तीन कड़ियों से शेष चारों टुकड़ों को आपस में जोड़ दीजिए।

तीन कड़ियां खोलीं

इसी तरह दूसरे सवाल में दी गई आकृति को इस तरह से दो हिस्सों में काटना था कि दोनों हिस्से एक-दूसरे के समान हों।

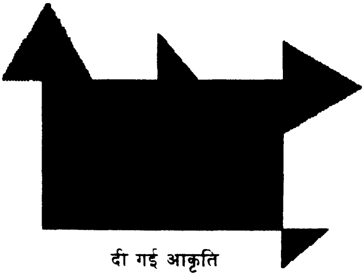

दी गई आकृति

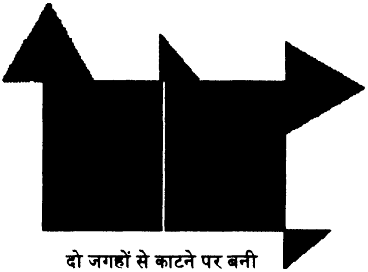

दो जगहों से काटने पर बनी समान आकृतियां

सही जवाब देने वाले पाठक हैं: टीकाराम पटेल, पेंडरुआं, बिलासपुर (छ.ग.)

इस बार ज़रा सिर खुजलाइए का सवाल देखिए पृष्ठ क्रमांक 44 पर

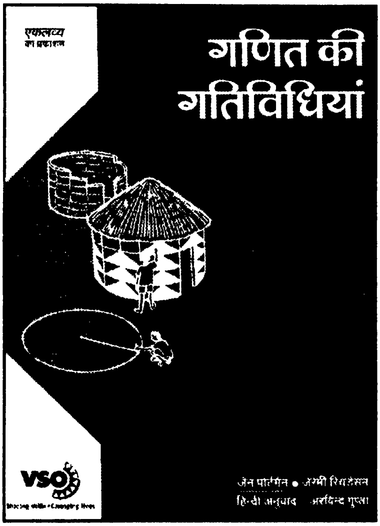

गणित शिक्षण में सहायक सामग्री

अन्य विषयों की तरह गणित को भी कक्षा में बेहतर ढंग से कैसे पढ़ाया जा सकता है जिससे बच्चों को गणित की पढ़ाई में मज़ा आए, कई शिक्षक यह जानना चाहते हैं। कई बार उनका सवाल होता है कि क्या विज्ञान की तरह गणित में भी कुछ ठोस गतिविधियां हो सकती हैं जिनकी मदद से गणितीय अवधारणाओं को बच्चे आसानी से समझ सकें? इस अंश में ऐसी ही कुछ गतिविधियों के बारे में जानकारी दे रहे हैं जिन्हें आपके आसपास मौजूद सामग्री से करवाया जा सकता है।

– शायद गणित पढ़ाने वाले सभी शिक्षकों के सामने एक सवाल खड़ा होता है – मेरे छात्र गणित की परीक्षा में बेहतर कर सकें इसके लिए मैं क्या कर सकता हूं?
– बच्चे गणित को समझें और बेहतर तरीके से समझ सकें, इसके लिए गणित को भी गतिविधि आधारित होना चाहिए। गतिविधियां ऐसी जो सरल, सुलभ सामग्री पर आधारित हों।
– सामग्री या संसाधनों की बात आते ही हम-आप सोच में पड़ जाते हैं कि गणित के हिसाब से ऐसी कौन-सी सामग्री हो सकती है?

एक बात साफ उभरती है। संसाधनों और गतिविधियों के ज़रिए छात्र कहीं अधिक बेहतर तरीके से सीख सकते हैं। शिक्षक के दृष्टिकोण से जिन चीज़ों में कठिनाइयां आएंगी वे हैं आयोजन, काम की योजना और गतिविधियों का लगातार संचालन।

किन साधनों का उपयोग किया जा सकता है?

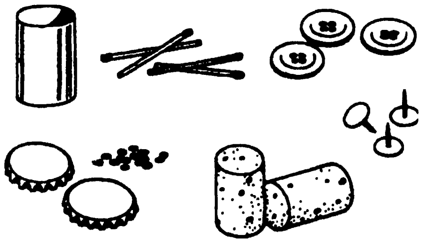

झाड़ू की सींकें, बोतलों के ढक्कन, कपड़े, माचिस की डिब्बियां, लिफाफे, सीपी-शंख, डोरियां, रबर के छल्ले, ड्राइंग पिनें, मोती-मनके, छोटे पत्थर, फीते, बटन, सिक्के, बीज, डिब्बे और बर्तन, कपड़े सुखाने की रस्सी, अखबार, पुरानी पत्रिकाएं, कागज़ और पुराने कार्ड, छोटी डगालें, लकड़ी के टुकड़े, गत्ते के पुराने डिब्बे, काली मिट्टी, टीन, झोले, बोतलें और लोग। परन्तु इसमें सबसे आवश्यक और महत्वपूर्ण है, दिमाग। इनके अलावा कई और चीज़ें हैं जो आपको आसानी से स्कूल और स्थानीय परिवेश से मिल जाएंगी।

साधन तैयार करना

कुछ शैक्षिक साधनों को तैयार करने में देरी लगती है। परन्तु, उन्हें बार-बार इस्तेमाल किया जा सकता है। दूसरी ओर कुछ चीज़ें

जल्दी बनाई जा सकती हैं और उन्हें भी बार-बार उपयोग किया जा सकता है। परन्तु कुछ वस्तुएं ऐसी हैं जिन्हें केवल एक ही बार इस्तेमाल कर सकते हैं। इनको बनाना चाहेंगे या नहीं, यह आप तय करें।

आपको कितनी संख्या में हरेक संसाधन चाहिए इसके बारे में भी सोचें। क्या आप इस मात्रा को कम कर सकते हैं? उदाहरण के लिए क्या आप, अपनी कक्षा का ढांचा बदल सकते हैं जिससे कि छात्रों का एक छोटा समूह ही एक बार में संसाधनों का प्रयोग करे? बाकी छात्र, सप्ताह के अन्य दिनों में उस उपकरण या शैक्षिक साधन को इस्तेमाल करें।

शिक्षण सामग्री आदि बनाने में सहायता लें। इसके लिए कुछ सुझाव इस प्रकार हैं:

– छात्र अपनी कापियां खुद बना सकते हैं।
– गणित के क्लब में, छात्रों के साथ मिलकर सीखने के साधन बनाएं।
– अपने अन्य शिक्षक साथियों के साथ मिलकर शैक्षिक साधन बनाएं। धीरे-धीरे आपके पास शिक्षण सामग्री का एक बैंक बन जाएगा।
– स्थानीय कारीगरों आदि को शैक्षिक साधन बनाने के लिए स्कूल में बुलाएं।
– एक टाइम-टेबिल बनाएं। शिक्षा के हरेक सत्र में कुछ शैक्षिक साधन बनाएं। इस प्रकार कुछ समय बाद आपके पास संसाधनों का भी एक बैंक बन जाएगा।

मौका पड़ने पर संसाधन तुरंत उपलब्ध हों, इसके लिए उन्हें संभाल कर रखने की कोई जगह बनाएं। इसकी ज़िम्मेदारी किसी छात्र को सौंपें। छात्र सुनिश्चित करें कि ये साधन पूरी कक्षा में उपलब्ध रहें।

अगले कुछ पन्नों में हम गणित के उन शुरुआती बिन्दुओं के बारे में चर्चा करेंगे जिनमें, आसानी से बनाई इस शिक्षण सामग्री का इस्तेमाल हो सकता है।

बोतल के ढक्कनों का उपयोग

विषय – प्रतिबिम्ब

दर्पण के एक ओर स्थित, हरेक बिन्दु का, दर्पण-रेखा के दूसरी ओर, उतनी ही दूरी पर प्रतिबिम्ब बनेगा।

आवश्यक सामान: बोतल के ढक्कन, छोटे दर्पण, कार्ड की पट्टी

गतिविधि

चित्र के अनुसार कार्ड की पट्टी पर बोतल के 5 ढक्कन रखें।

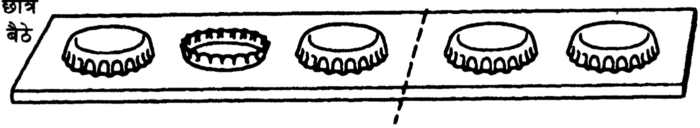

दर्पण को टूटी रेखा पर रखें। उसके दोनों ओर एक-एक छात्र बैठे। एक छात्र दूसरे से पूछे कि उसे क्या दिखाई दे रहा है? आपकी राय में, दूसरे छात्र को क्या दिखाई दे रहा होगा? अब दर्पण-रेखा को सरकाएं। अब आपको क्या दिख रहा है? दूसरे छात्र को क्या दिख रहा होगा?

ढक्कनों की दो कतारें बनाएं या भिन्न रंगों के ढक्कनों को, अलग-अलग पैटर्न में सजाकर प्रयोग करके देखें।

विषय – अनुमान

नाप की किन्हीं भी दो इकाइयों की आपस में तुलना की जा सकती है। उदाहरण के लिए मीटर की तुलना सेंटीमीटर, इंच, हाथ के बालिश्त आदि से की जा सकती है।

गतिविधि

अनुमान के बारे में पूछताछ करने के लिए कक्षा में छात्रों की दो टीमें बनाएं। हरेक टीम, अनुमान से संबंधित प्रश्नों की एक सूची बनाए। उदाहरण के लिए:

बोतल के कितने ढक्कनों से एक कप भरेगा? एक भगोना? एक बाल्टी? एक ट्रक? एक ट्रक बोतलों का भार कितना होगा?

बोतल के कितने ढक्कनों को सटाकर रखने से एक मीटर बनेगा? एक किलोमीटर? कक्षा की लंबाई?

हरेक टीम अपने प्रश्नों के उत्तरों के सही अंदाज़ की एक मान्य सीमा तय करे। जो टीम सबसे सही अनुमान लगाएगी, वही जीतेगी।

विषय – निर्देशांकों की जोड़ियां और रूपांतरण

– निर्देशांकों की जोड़ी किसी चौखाने के जाल में, जोड़ों की स्थिति को निरूपित करती है। जिस बिन्दु के निर्देशांक (2,3) होंगे, वह मूल बिन्दु से X अक्ष (आड़ी रेखा) की तरफ 2 इकाई और Y अक्ष (खड़ी रेखा) की ओर 3 इकाई दूर होगा।

– रूपांतरण में किसी नियम के आधार पर, आकृतियों को बदलना और उन्हें स्थानांतरित करना होता है। आकृतियों को रूपांतरित करने के चार तरीके हैं: परावर्तन, घुमाना, स्थानांतरण और बड़ा करना।

निर्देशांकों के साथ गतिविधि

एक बड़े कागज़ पर या ज़मीन पर दो अक्षों को बनाएं। उन पर X और Y अक्ष लिखें।

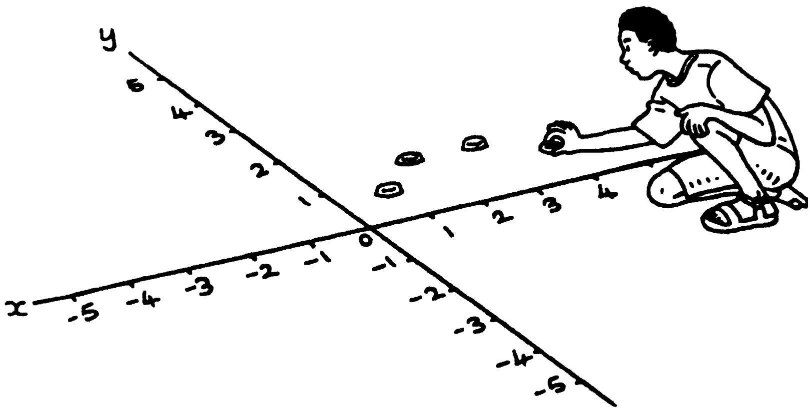

चौखाने जाल पर बोतल के चार ढक्कनों को इस तरह रखें जिससे वे किसी चतुर्भुज के चार कोनों को निरूपित करें। उनके निर्देशांक नोट करें। इसी प्रकार कुछ अन्य चतुर्भुज बनाएं और उनके भी निर्देशांक नोट करें।

इन चतुर्भुजों को अलग-अलग समूहों में रखें जैसे:

वर्ग, आयत, समचतुर्भुज, समानांतर चतुर्भुज, पतंग, समलंब। हरेक समूह की निर्देशांक जोड़ियों में समानता खोजने का प्रयास करें।

रूपांतरण के लिए गतिविधियां

परावर्तन: दर्पण के एक ओर स्थित, हरेक बिन्दु का दर्पण-रेखा के दूसरी ओर, उतनी ही दूरी पर स्थित, प्रतिबिम्बित बिन्दु बनेगा।

बोतल के 4 ढक्कनों की चपटी सतहें ऊपर रखकर, उनसे एक चतुर्भुज बनाएं। उनके निर्देशांक नोट करें। अब 4 ढक्कनों की दंतीली सतहें ऊपर रखकर, उनसे X अक्ष के दूसरी ओर पहले चतुर्भुज का प्रतिबिम्ब बनाएं। उनके भी निर्देशांक नोट करें। अब पहले चतुर्भुज और प्रतिबिम्बित चतुर्भुज के निर्देशांकों की तुलना करें।

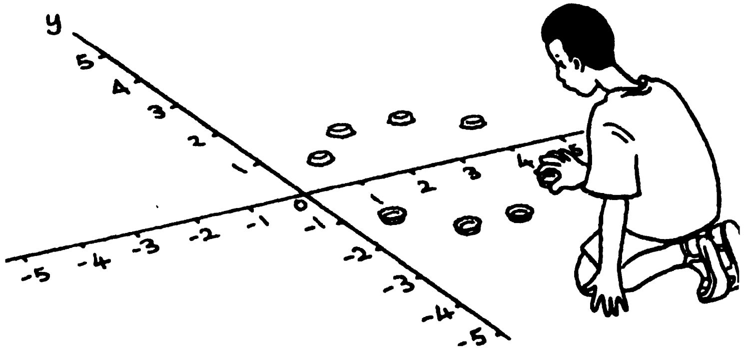

इस प्रयोग को कई अन्य चतुर्भुजों के साथ भी दोहराएं। उनके निर्देशांकों को नोट करें और फिर निर्देशांकों की जोड़ियों के बीच परस्पर सम्बंधों की जांच-पड़ताल करें।

रेखा X= 0 और Y=X की रेखाओं से भी चतुर्भुजों को प्रतिबिम्बित करें।

घूमना: सभी बिन्दु केन्द्र के चारों ओर, एक-समान कोण से घूमेंगे।

ढक्कनों की चपटी सतहें ऊपर रखकर कोई आकार बनाएं। आकार के कोनों के निर्देशांकों को नोट करें। अब ढक्कनों की दंतीली सतहें ऊपर रखें और पहले आकार का मूलबिन्दु से घड़ी की दिशा में 90 डिग्री घूमा हुआ प्रतिबिम्ब बनाएं। इस नए प्रतिबिम्ब के निर्देशांक भी नोट करें। फिर दोनों निर्देशांक जोड़ियों की तुलना करें।

इसी प्रकार आकार को घड़ी की दिशा में 180 डिग्री और घड़ी की विपरीत दिशा में 90 डिग्री घुमाकर देखें।

बड़ा करना: कोई भी आकार किसी पैमाने के अनुसार ही बड़ा होता है। यह पैमाना ही निश्चित करेगा कि नए आकार की हरेक भुजा, कितनी बड़ी होगी।

ढक्कनों की चपटी सतह ऊपर रखकर कोई आकार बनाएं। आकार के कोनों के निर्देशांकों को नोट करें। अब ढक्कनों की दंतीली सतहें ऊपर रखें और मूलबिन्दु से, पहले आकार से दो गुनी बड़ी आकृति बनाएं। इस नई आकृति के निर्देशांकों को भी नोट करें। फिर दोनों निर्देशांक जोड़ियों की तुलना करें।

इसी प्रकार मूलबिन्दु से कुछ अन्य आकृतियों को दो गुना बड़ा करें। इनके नए निर्देशांकों को नोट करें। नए निर्देशांकों की जोड़ियों की आपस में तुलना करें।

इसी प्रकार 5, 1/2, –2 गुना बड़ा करने का प्रयास करें। अब मूलबिन्दु की बजाए अन्य बिन्दुओं से भी बड़ा करने की कोशिश करें।

स्थानांतरण: आकृति पर स्थित सभी बिन्दु एक ही दिशा में एक-समान दूरी तक ही सरकेंगे।

ढक्कनों की चपटी सतहें ऊपर रखकर, कोई आकार बनाएं। आकार के कोनों के निर्देशांकों को नोट करें।

अब ढक्कनों की दंतीली सतहें ऊपर रखकर, उसी आकार को, स्थानांतरित स्थिति में बनाएं। नई स्थिति के निर्देशांकों को भी नोट करें। फिर दोनों निर्देशांक जोड़ियों की तुलना करें।

भिन्न-भिन्न आकृतियों को स्थानांतरित करें। हर बार निर्देशांक नोट

करें और फिर निर्देशांकों की जोड़ियों के बीच, परस्पर सम्बंधों को खोजें।

अब अलग-अलग प्रकार से स्थानांतरण करें और देखें कि क्या होता है।

संयोग

सभी संभावित परिणामों की सूची बनाएं और उन्हें एक व्यवस्थित तरीके से गिनें।

गतिविधि

आप तीन भिन्न ढक्कनों को कितने अलग-अलग तरीकों से एक सीधी रेखा में सजा सकते हैं?

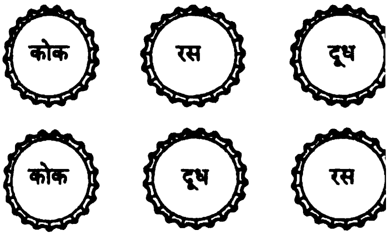

अलग-अलग संख्याओं के ढक्कनों के साथ इस प्रयोग को दोहराएं।

विषय: विकास के पैटर्न, अंकगणितीय श्रेणियां और ज्यामितीय श्रेणियां

- विकास के पैटर्न में एक क्रम होता है जिसके अनुसार उनमें हर बार एक निश्चित बढ़त होती है।
- बीजगणित के द्वारा इस बढ़त का वर्णन किया जा सकता है।
- अंकगणितीय श्रेणियों के हर अंक में समान बढ़त होती है।
- ज्यामितीय श्रेणियों के हर अंक में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़त होती है।

गतिविधि

बोतल के ढक्कनों से पैटर्न 1 बनाएं।

पैटर्न 1

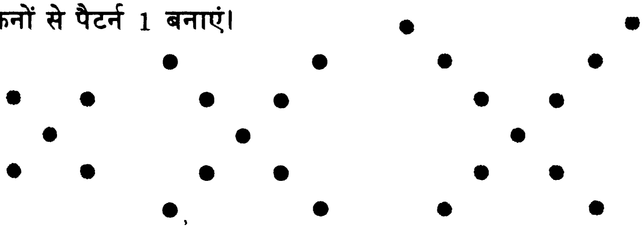

हरेक पैटर्न में कितने ढक्कन लगे? हर बार कितने और ढक्कन जोड़े गए?

नीचे की तालिका में, हर पद के लिए ढक्कनों की संख्या को गिनें:

पद 1:1 **पद** 2:1+ ... **पद** 3:1+ ... +... **पद** 4:1+... +... +...

nवें पद के लिए बीजगणित का नियम लिखें।

नीचे कई पैटर्न दिए गए हैं। उन्हें ढक्कनों से बनाएं। हरेक पैटर्न के लिए मालूम करें कि:

- हरेक पद के लिए ढक्कनों की संख्या?
- हरेक पद पर, कितने और ढक्कन जोड़े गए?

हर बार की बढ़त को, बीजगणितीय नियम का रूप दें।

पांचवें पद, आठवें पद और nवें पद में, लगने वाले ढक्कनों की संख्या लिखें। हरेक श्रेणी, अंकगणितीय होगी या ज्यामितीय, इसे तय करें। खोजबीन के लिए खुद ही इस प्रकार के कुछ पैटर्न बनाएं।

पैटर्न 2

पैटर्न 3

पैटर्न 4

पैटर्न 5

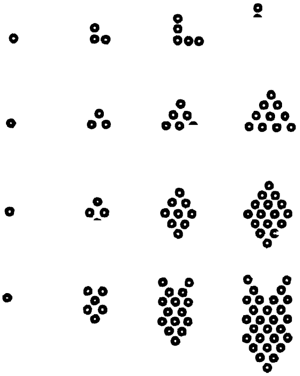

गणित की गतिविधियां (मूल्यः 75 रुपए)

मंगवाने का पता

एकलव्य

ई–7/एच. आई. जी. 453, अरेरा कॉलोनी

भोपाल, म. प्र. पिनः 462016 फोनः 0755–463380

सिर्फ संदर्भ के ग्राहकों के लिए

स्रोत

सामान्य वार्षिक चन्दा 150 रुपए

संदर्भ के ग्राहकों के लिए 125 रुपए

वर्ष 1999- 2002 के

सजिल्द स्रोत

150 रुपए प्रति वर्ष मे उपलब्ध हैं।

डाक से मगवाने पर 25 रुपए अतिरिक्त

चन्दा मनीऑर्डर या एकलव्य के नाम बने ड्राफ्ट से भेजें।

साथ में संदर्भ की ग्राहक संख्या का उल्लेख ज़रूर करें।

एकलव्य ई-7/453 एच.आई.जी. अरेरा कॉलोनी भोपाल-16

जन्म 1879 – मृत्यु 1955

आइंस्टाइन विज्ञान से शांतिवाद तक

सुबीर सरकार

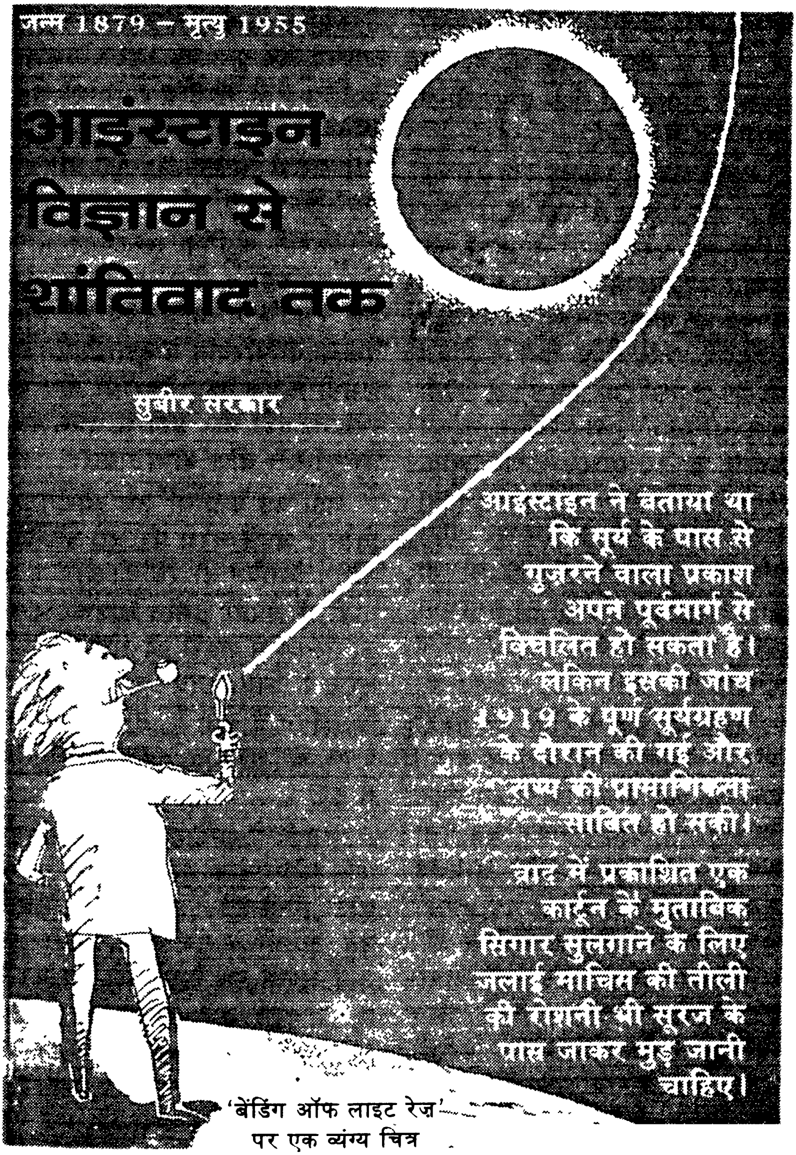

'बेंडिंग ऑफ लाइट रेज़' पर एक व्यंग्य चित्र

जिन दिनों आइंस्टाइन जर्मनी में बड़े हो रहे थे, वे दिन यूरोपीय इतिहास में काफी उथल-पुथल वाले दिन थे।

उनके जन्म से कुछ पूर्व, सन् 1871 में, मज़दूरों और सैनिकों ने मिलकर पेरिस की सरकार को अपदस्थ कर कम्यून की स्थापना की थी। सत्ता पर उनका यह कब्ज़ा लगभग तीन महीने बरकरार रहा। जर्मन सेना ने पेरिस की इस जनक्रांति को कुचलने में अपनी सहायता प्रदान की। परिणाम-स्वरूप कम्यून के 30,000 से भी ज़्यादा सदस्यों को फांसी पर लटका दिया गया। और जर्मनी के चांसलर ऑटो वॉन बिस्मार्क ने यह दंभपूर्ण घोषणा की "वर्तमान समस्याओं का समाधान बहुमत और लोकसंकल्प से नहीं, बल्कि खून से किया जाएगा"।

इसके दो वर्ष बाद ही एक गहरा और विश्वव्यापी आर्थिक संकट आया। एक ओर जहां चंद लोगों ने इस संकट का अनुचित लाभ उठाकर खूब पैसा कमाया, वहीं दूसरी ओर सामान्य जनता का जीना दूभर हो गया। चारों ओर असंतोष की लहर व्याप्त थी। श्रमिकवर्ग आंदोलन पर उतर आया। इस आंदोलन को दबाने के लिए बिस्मार्क ने कई समाजवाद विरोधी कानून बनाए। जर्मनी एक सैन्य प्रधान देश बनता जा रहा था। सन् 1870 से 1890 के बीच उसका शस्त्र-व्यय लगभग तीन गुना बढ़ा। हरेक नागरिक के लिए सेना में तीन साल की सेवा अनिवार्य कर दी गई। हर तरह के समाजवादी साहित्य पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया।

गहराते आर्थिक संकट का सारा दोष यहूदियों के मत्थे मढ़ दिया गया। सन् 1879 में आइंस्टाइन का जन्म एक यहूदी परिवार में हुआ। उसी वर्ष जर्मनी में एक यहूदी विरोधी लीग की स्थापना हुई। और यहीं से नात्सीवाद का कुत्सित बीज बोया गया।

यही वह वक्त था जब औद्योगिक विस्तार अपने चरम पर था। बड़े-बड़े उद्योग स्थापित हो रहे थे। लोग-बाग गांवों में अपनी ज़मीन छोड़कर काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर थे। और जैसा कि लेनिन ने कहा है, सन् 1880 के दशक की शुरुआत एकछत्र पूंजीवाद से हुई।

उन दिनों आइंस्टाइन के पिता, जो एक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर थे, एक छोटी-सी फैक्ट्री के मालिक थे। लेकिन बड़े उद्योगों के पूंजीवादी विस्तार ने उन्हें अपनी इस फैक्ट्री को बंद करने पर मजबूर कर दिया। नतीजतन, आइंस्टाइन परिवार को काम की तलाश में शहर-दर-शहर भटकना पड़ा। इन घटनाओं का आइंस्टाइन के मन पर

गहरा असर पड़ा। यहां तक कि सत्रह साल की उम्र तक आते-आते अपने देश जर्मनी के प्रति उनकी घृणा इतनी प्रबल हो चुकी थी कि आगे की पढ़ाई के लिए उन्होंने स्विट्ज़रलैंड जैसे तटस्थ देश जाने का फैसला किया। यहां आइंस्टाइन की शिक्षा ज़्यूरिख के एक संभ्रांत स्कूल में हुई। ऐसे स्कूल में उन जैसे साधारण परिवार के लड़के द्वारा तकनीकी शिक्षा प्राप्त करना वास्तव में एक बड़ी बात थी। विडम्बना यह थी कि ऐसे स्कूल उसी पूंजीवादी व्यवस्था के परिणाम थे, जिसने उनके परिवार को आर्थिक कष्ट झेलने पर मजबूर किया।

जैसा कि सब जानते हैं, आइंस्टाइन के केरियर की शुरुआत किसी विज्ञान अकादमी में न होकर, पेटेंट कार्यालय के एक क्लर्क की हैसियत से हुई। यहीं रहकर उन्होंने वह काम किया, जिसने आगे चलकर उन्हें विश्वव्यापी प्रसिद्धि और नोबेल पुरस्कार दिलवाया। इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह कि आइंस्टाइन का यह काम भौतिकी में उस समय के प्रचलित विचारों से एकदम अलग था। हालांकि इस काम की गहराई को समझाने के लिए भौतिकी और उसके ऐतिहासिक विकास की समझ आवश्यक है। फिर भी हम आइंस्टाइन के भौतिकी के प्रति योगदान के मूलभूत सिद्धांतों को समझने की कोशिश करेंगे।

रचनात्मक व आधारभूत सिद्धांत

मूलतः आइंस्टाइन ने दो प्रकार के सिद्धांतों के अंतर को निरूपित किया। ज़्यादातर सिद्धांत पहले तरह के होते हैं, जिन्हें उन्होंने रचनात्मक सिद्धांतों की संज्ञा दी। ऐसे सिद्धांत आज अपचयवादी कहलाएंगे क्योंकि ये वृहत्ताकार एवं जटिल घटनाओं की व्याख्या, उनके सूक्ष्म अवयवों के व्यवहार पर आधारित, अपेक्षाकृत सरल तर्कों के द्वारा करते हैं। ये अवयव अधिकतर परिकाल्पनिक होते हैं। दूसरी प्रकार के सिद्धांतों को उन्होंने आधारभूत सिद्धांतों के नाम से पुकारा। इस तरह के सिद्धांतों का आधार परिकाल्पनिक अवयव न होकर, घटनाओं के वे सामान्य गुणधर्म होते हैं जो अनुभव-जन्य एवं प्रायोगिक अवलोकन के योग्य होते हैं। स्वयं आइंस्टाइन ने दोनों तरह के सिद्धांतों का विकास किया।

रचनात्मक सिद्धांत का एक उदाहरण गैसों की कायनेटिक थ्योरी है। इस थ्योरी में किसी गैस के गुणधर्म, जैसे कि उसके ताप एवं दाब, उसके परिकाल्पनिक अवयव यानी अणुओं की अभिक्रिया एवं चाल पर निर्भर करते हैं। इस संदर्भ में आइंस्टाइन ने अपने आप से एक बिल्कुल सीधा एवं सरल प्रश्न किया। प्रश्न था, "कोई यह कैसे सिद्ध कर सकता है या नकार सकता है कि अणु वास्तविक पदार्थ

होते हैं? और अगर वे वास्तविक होते हैं तब क्या उनके आकार को नापा जा सकता है या फिर उनकी गिनती की जा सकती है?" इन सवालों के उत्तर पाने के लिए उन्होंने ब्राउनियन गति को अपना केंद्र बिंदु बनाया। ब्राउनियन गति किसी घोल में मिले पदार्थ के छोटे-छोटे टुकड़ों की गति को कहते हैं, और इसे सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखा जा सकता है। आइंस्टाइन ने प्रयोगों के द्वारा दिखाया कि ऐसा द्रव के अणुओं की द्रुत गति के कारण होता है। इस अत्यंत तेज़ गति के कारण द्रवाणु घोल में मिले पदार्थ के कणों से बार-बार टकराते हैं। ऐसा प्रति सेंकड लगभग 10^{20} बार होता है, और चूंकि अणुओं का घूमना हर संभावित दिशा में होता है, कुल मिलाकर उनकी गति संयोगिक बन जाती है। दरअसल अणुओं की इसी गति को व्यवहारिक स्तर पर हम ऊष्मा के रूप में महसूस करते हैं। कोई वस्तु उतनी ही गर्म होगी जितनी उसके अणुओं की गति होगी। गति ज़्यादा

क्या अणु वास्तविक पदार्थ होते हैं? क्या उनके आकार को नापा जा सकता है या उनकी गिनती की जा सकती है? इन सवालों के उत्तर पाने के लिए आइंस्टाइन ने किसी द्रव के अणुओं की संख्या नापने के कई तरीके इजाद किए। इससे अणुओं का भौतिक अस्तित्व साबित हो सका।

तो गर्मी भी ज़्यादा, गति कम तो गर्मी भी कम। इसके अलावा आइंस्टाइन ने किसी द्रव के अणुओं की संख्या नापने के कई ऐसे स्वतंत्र तरीके भी विकसित किए जिनका निष्कर्ष हमेशा एक ही रहा। इस तरह उन्होंने अणुओं की भौतिक सत्यता को बिना किसी शक-ओ-शुबा प्रमाणित किया।

प्रकाश क्वांटम परिकल्पना

भौतिकशास्त्र में यह उनका पहला कार्य था। और यही आगे चलकर क्वांटम थ्योरी के प्रति उनके उस योगदान का आधार बना, जिसे उन्होंने अपना सर्वाधिक क्रांतिकारी काम माना। इसमें उन्होंने इस विचार का सूत्रपात किया कि प्रकाश वास्तव में ऊर्जा के छोटे-छोटे बंडलों से मिलकर बना होता है। इन बंडलों को फोटॉन कहा जाता है। उनकी यह परिकल्पना 'प्रकाश क्वांटम परिकल्पना' के नाम से जानी जाती है, और इसी पर उन्हें नोबेल पुरस्कार दिया गया। इस परिकल्पना की परिणिति 'फोटो इलेक्ट्रिक इफेक्ट' में हुई जो कि प्रायोगिक कसौटी पर एकदम खरा उतरा। एक साधारण फोटो इलेक्ट्रिक सेल की कार्य पद्धति इसी सिद्धांत पर आधारित है।

यहां पर यह बतलाना ज़रूरी हो जाता है कि उन दिनों इस सिद्धांत को कितना अटपटा माना गया। इसके पहले लगभग दो सौ सालों से यह धारणा चली आ रही थी कि प्रकाश एक तरंग के रूप में बहता है। देखा जाए तो एक तरंग के चलने में और एक कण के चलने में बहुत अंतर होता है। लेकिन 'प्रकाश क्वांटम परिकल्पना' मूलत: यही कहती है कि कभी-कभी प्रकाश भी एक कण की भांति व्यवहार कर सकता है। ऐसे में, वो भी अपनी ऊर्जा दूसरे कणों जैसे इलेक्ट्रॉन इत्यादि को ठीक इस तरह प्रदान कर सकता है जैसे वह स्वयं भी कण हो। और यही बात तो उस वक्त 'फोटो इलेक्ट्रिक सेल' में होती है, जब सेल पर डाला गया प्रकाश इलेक्ट्रॉन को अपनी ऊर्जा देकर उन्हें बाहर निकालता है। प्रयोग द्वारा इन छोड़े गए इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा को, डाले गए प्रकाश की तीव्रता से स्वतंत्र पाया गया। इसका मतलब यह हुआ कि ऊर्जा का यह स्थानांतरण एक सतत् प्रक्रिया न होकर, टुकड़ों-टुकड़ों में होता है। ऐसा होना असंभव होता, अगर प्रकाश एक लहर की तरह चलता।

निश्चयवाद का अंत

क्वांटम थ्योरी में हम ऐसी स्थिति का भी सामना करते हैं, जब इलेक्ट्रॉन जैसा एक बुनियादी कण भी तरंग की तरह व्यवहार करने लगता है। यानी कि हम निरपेक्ष रूप से कभी भी यह नहीं मान सकते कि अमुक चीज़ तरंग है या कण। क्वांटम थ्योरी के इस

मूलभूत सिद्धांत ने उस समय के मान्य निश्चयवाद को काफी गहरी चोट पहुंचाई। आइंस्टाइन और भी आगे गए जब उन्होंने पाया कि क्वांटम स्तर पर कारणता का निर्बाध अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है, अर्थात किसी प्रक्रिया का ठीक-ठीक परिणाम क्या होगा, यह भी हम निश्चित तौर पर नहीं कह सकते। बतला सकते हैं तो सिर्फ उस परिणाम के होने की संभावना। निश्चितता का स्थान संभावना ने हथिया लिया। और यहीं से निश्चयवाद के अंत की शुरुआत हुई। हालांकि आइंस्टाइन स्वयं भी इस तथ्य को पचा न सके कि क्वांटम स्तर पर किसी परिणाम के होने या न होने की हम सिर्फ संभावना ही जतला सकते हैं। तभी तो उन्होंने अपने ये प्रसिद्ध शब्द कहे, ".... ईश्वर जुआ नहीं खेलता ...।" मन ही मन वे मानते रहे कि किसी गहन स्तर पर प्रकृति अवश्य ही निश्चयवादी है। अर्थात किसी भी चीज़ के होने का कोई कारण अवश्य होगा। हां, हमारा तात्कालिक ज्ञान अवश्य ही इतना सीमित हो सकता है कि हम वह कारण न जान पाएं। और यह बहस तब से अब तक जारी है।

इसके अलावा आइंस्टाइन ने दो मूलभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन भी किया, जिन्हें सापेक्षता के विशिष्ट एवं सामान्य सिद्धांत कहा जाता है।

सापेक्षता का विशिष्ट सिद्धांत

सापेक्षता की स्पेशल थ्योरी का आधार दो सिद्धांत हैं। पहला सिद्धांत यह है कि इस संसार को देखने का कोई भौतिक तरीका निरपेक्ष नहीं, पूर्ण नहीं। भौतिक स्तर पर हर चीज़, हर मापदंड, हर अवलोकन सापेक्ष है; उसका कोई-न-कोई संदर्भ है। दूसरा सिद्धांत यह है कि प्रकाश का वेग भौतिक स्तर पर सबसे अधिक है, प्रकाश से ज़्यादा तेज़ कोई भी भौतिक वस्तु इस दुनिया में नहीं है। आइए इन साधारण से सिद्धांतों को और अच्छी तरह से समझें।

पहले सिद्धांत के अनुसार सारी निरंतर गतियां सापेक्ष हैं। इसका क्या मतलब? ट्रेन में सफर करते वक्त हम कहते हैं कि ट्रेन चल रही है। इसके मायने क्या? असल में ट्रेन का यह चलना उस ज़मीन के संदर्भ में है जिसे हम चलती ट्रेन से देखने पर स्थिर पाते हैं। तो क्या ज़मीन वाकई में रुकी हुई है? हम जानते हैं कि ऐसा नहीं है, पृथ्वी तो लगातार घूम रही है। आइए अब उस ऑब्ज़र्वर के हिसाब से देखें जो अंतरिक्ष से पृथ्वी का अवलोकन कर रहा है। हमारी पृथ्वी तो उसे घूमती नज़र आएगी, पर अगर ट्रेन की गति, उस ट्रेन और पृथ्वी की गतियों के अंतर के ठीक बराबर हुई, तो उसे ट्रेन चलती के बजाए रुकी हुई

नज़र आएगी। लेकिन, क्या हम कह सकते हैं कि उस प्रेक्षक का देखना एकदम सही है, निरपेक्ष है? देखा जाए तो ऐसा प्रेक्षक स्वयं भी, किसी अन्य प्रेक्षक – जो हमारे सौरमंडल के भी बाहर से देख रहा हो – के मुकाबले चल रहा है। तो फिर निरपेक्ष किसे मानें हम? सभी कुछ तो सापेक्ष है। युगों से मानव भगवान की अवधारणा में विश्वास करता चला आ रहा है। जब भी उसे किसी बात के, प्रश्न के, निरपेक्ष उत्तर की आवश्यकता पड़ी उसने इस भगवान रूपी कॉन्सेप्ट का सहारा लिया। लेकिन जब उसका यही आश्रयदाता कॉन्सेप्ट उभरते हुए यंत्रवादी दृष्टिकोण से छिन्न-भिन्न होने लगा, तब वैज्ञानिकों ने एक नए सहारे की खोज की – अंतरिक्ष में हर तरफ फैले स्थिर ईथर की अवधारणा की। लेकिन आइंस्टाइन की परिकल्पना कहती है कि ऐसे किसी पूर्ण रूप से निरपेक्ष तत्व ईथर की ज़रूरत ही नहीं क्योंकि इस परिकल्पना के अनुसार ऐसा कुछ भी नहीं हो सकता जिसे हम सही, पूर्ण या निरपेक्ष दृष्टिकोण कह सकें।

सापेक्षता की स्पेशल थ्योरी का दूसरा सिद्धांत कहता है कि प्रकाश का वेग सर्वाधिक वेग है। इस सिद्धांत का आधार यह परिकल्पना है कि प्रकृति में कोई भी अभिक्रिया तात्कालिक नहीं है। यानी किसी भी क्रिया के होने और उसके परिणाम मिलने में कुछ न कुछ समय ज़रूर लगता है, चाहे वह समय कितना ही छोटा क्यों न हो। यह सब एकदम नहीं होता, उसी क्षण नहीं होता। आइए, इस परिकल्पना को प्रकाश के वेग के संदर्भ में देखें। जैसा कि हम जानते हैं, किसी बल का यह स्थानांतरण (ट्रांसफर) फोटॉन के ज़रिए होता है। प्रकाश ही नहीं बल्कि सारी विद्युत चुंबकीय तरंगें फोटॉन से मिलकर बनी होती हैं। इसलिए प्रकाश में भी विद्युत चुंबकीय बलों का स्थानांतरण फोटॉन के ज़रिए होता है। अब ये बल आकर्षण के भी हो सकते हैं, विकर्षण के भी। यह सब उन कणों की प्रकृति पर निर्भर करता है जिनके बीच इन बलों का स्थानांतरण हुआ है। एक इलेक्ट्रॉन जब दूसरे इलेक्ट्रॉन को दूर फेंकता है तो ऐसा वह उसे फोटॉन देकर करता है। यह प्रक्रिया तात्कालिक नहीं होती, क्योंकि फोटॉन को पहले इलेक्ट्रॉन से दूसरे इलेक्ट्रॉन तक पहुंचने में कुछ समय तो लगता ही है। फोटॉन प्रकाश की गति से चलता है। स्पेशल थ्योरी के मुताबिक इस प्रक्रिया से तेज़ प्रक्रिया इस दुनिया में कोई भी नहीं। यानी कि प्रकाश से तेज़ कोई वस्तु है ही नहीं।

उपरोक्त दोनों सिद्धांतों से हम कुछ चौंकाने वाले निष्कर्षों पर पहुंचते हैं। मान लीजिए कि आप प्रकाश की एक किरण के साथ-साथ चल रहे हैं। स्वाभाविक ही आपको अपने संदर्भ में

प्रकाश ठहरा हुआ-सा लगेगा, क्योंकि आपकी गति और प्रकाश की गति समान है। ऐसे में अगर आप अपना चेहरा आइने में देखें तो आपको कुछ भी नज़र नहीं आएगा। और आपका दृष्टिकोण सामान्य न रहकर विशिष्ट बन चुका होगा, क्योंकि आप की गति अब निरपेक्ष हो गई है। लेकिन निरपेक्ष किस हिसाब से, किस दृष्टिकोण से! प्रथम सिद्धांत के अनुसार ऐसा कोई भी दृष्टिकोण नहीं जो निरपेक्ष गति को सुनिश्चित कर सके। इसलिए इस सिद्धांत के अनुसार आपका प्रतिबिंब गायब नहीं हो सकता। होगा यह कि, किसी दूसरे ऑब्ज़र्वर को प्रकाश आप से उतनी ही तेज़ गति से दूर जाता दिखेगा जिस गति से वह आपकी ओर आ रहा होगा।

इन सिद्धांतों से आइंस्टाइन इस नतीजे पर पहुंचे कि समय और दूरी के माप (जो किसी भी गति को मापने के लिए ज़रूरी हैं) स्वयं मापने वाले की गति पर निर्भर करेंगे। दैनिक जीवन में हमारा पाला जिन गतियों से पड़ता है वे प्रकाश की गति (3,00,000 किमी प्रति सेंकड) के मुकाबले काफी कम होती हैं और हम इस बात को महसूस ही नहीं करते कि दूरी और समय के माप भी बदल सकते हैं। हम समझते हैं कि वे हमेशा एक स्थिर संख्या में होते हैं। लेकिन किसी भी ऐसे प्रेक्षक को, जिसका वेग प्रकाश के वेग की ओर बढ़ रहा है, किसी स्थिर प्रेक्षक के मुकाबले समय और दूरियां कम होती प्रतीत होंगी। नतीजतन, स्थिर प्रेक्षक को जो दो घटनाएं एक ही समय में घटित होती प्रतीत होती हैं, वे उस गतिमान प्रेक्षक को अलग - अलग समय में घटती हुई लगेंगी। अर्थात् समय के सूक्ष्मतम अंतरालों को हम तभी महसूस कर सकते हैं जब हमारी स्वयं की गति प्रकाश की गति को लक्ष्य मानकर उसकी ओर बढ़े। वरना आम भौतिक स्तर पर घटने वाली कई घटनाओं के बीच बसे सूक्ष्म अंतराल को महसूस ही नहीं कर पाएंगे, जैसा कि अक्सर होता ही है। कितनी गहरी है यह परिकल्पना! और इसी परिकल्पना ने उस समय में प्रचलित न्यूटन के इस विचार को धक्का पहुंचाया, कि समय एवं अंतरिक्ष निरपेक्ष होते हैं, कि वे कभी नहीं बदलते हैं।

उपरोक्त निष्कर्षों ने हमें यह भी बताया है कि किसी भी पदार्थ का द्रव्यमान निरपेक्ष नहीं होता; बल्कि उस पदार्थ में समाहित ऊर्जा की मात्रा पर निर्भर करता है। और इस ऊर्जा-मात्रा के बढ़ने के साथ-साथ उसका द्रव्यमान भी बढ़ेगा। किसी पदार्थ की ऊर्जा-मात्रा उस पदार्थ की गति के साथ बढ़ती है। अर्थात् अगर किसी पदार्थ की गति बढ़ाई जाए तो उसकी ऊर्जा-मात्रा भी बढ़ेगी और फलस्वरूप

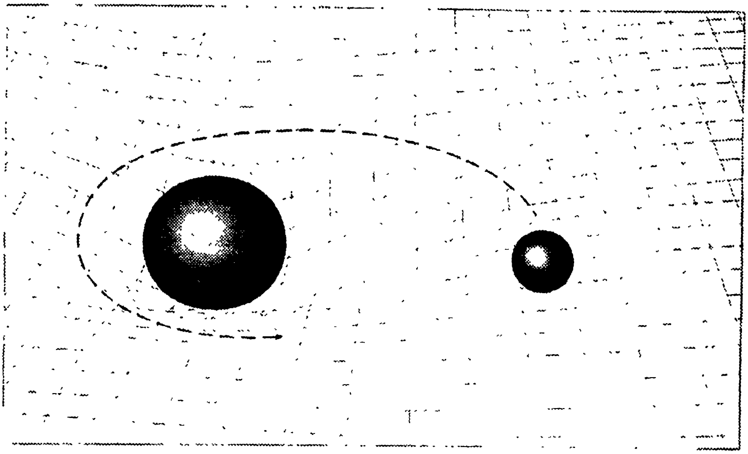

पूर्व की मान्यताओं के विपरीत आइंस्टीन का मानना था कि स्पेस और समय दोनों मुड़ सकते हैं। इस नई अवधारणा के मुताबिक विशाल-भारी पिंड अपने गुरुत्वबल से अपने आसपास की स्पेस में विकृति (Distortion) लाते हैं। इस बात को समझने के लिए एक रबर की शीट की कल्पना करें जिस पर एक भारी गेंद रखी हुई है। थोड़ी दूरी पर एक हल्की गेंद रखी है। भारी पिंड की वजह से रबर शीट रूपी स्पेस में जो विकृति आती है उसके कारण दूसरी गेंद उसकी ओर गिरने की कोशिश कर रही है। ब्रह्मांड में पिंडों के एक-दूसरे के इर्दगिर्द घूमने की यह एक वैकल्पिक व्याख्या है।

उसका द्रव्यमान भी बढ़ेगा। यह तथ्य आइंस्टाइन के इस विश्वप्रसिद्ध समीकरण में निहित है:

$$E = mc^2$$

और यह समीकरण शायद इस शताब्दी का सबसे प्रसिद्ध समीकरण है। इसी समीकरण ने पदार्थ के द्रव्य की ऊर्जा के उपयोग की संभावनाओं को आकार दिया। इसके पहले तक हम सिर्फ पदार्थ की रासायनिक एवं गतिज (कायनेटिक) ऊर्जा के बारे में जानते थे। हालांकि आइंस्टाइन ने इस ऊर्जा को प्राप्त करने के तरीकों के बारे में कुछ भी नहीं कहा, फिर भी उनके इस कार्य ने एटम बम के विकास की नींव डाली।

सापेक्षता का सामान्य सिद्धांत

आइंस्टाइन की सापेक्षता की जनरल थ्योरी न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियम का विस्तार है। इस थ्योरी ने गुरुत्वाकर्षण के नियम में कुछ मूलभूत सुधार भी किए। आगे चलकर यह थ्योरी ब्रह्मांड विज्ञान के विकास का आधार बनी। ब्रह्मांड विज्ञान में हम

ब्रह्मांड की उत्पत्ति और उसके विकास के बारे में पढ़ते हैं। जानते हैं जनरल थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी का आधार क्या है? बड़ा ही सीधा-सा एक प्रश्न, जो उन्होंने पेटेंट ऑफिस में अपने कार्यकाल के दौरान अपने-आप से किया। दरअसल आइंस्टाइन की कई चरित्रगत विशेषताओं में एक विशेषता यह भी थी कि ऐसे प्रश्नों से रूबरू होना, जो ऊपर से दिखते तो सीधे हैं लेकिन होते हैं बड़े गहरे। साथ ही उनमें एक और खूबी थी, वह यह कि ऐसे गूढ़ प्रश्नों के उत्तर खोजने की लगन और उन्हें समझने की अंतर्दृष्टि। यही खूबियां उनके कार्यों का, विचारों का, एक अभिन्न अंग बनी। तर्क में उनका विश्वास इतना गहरा था कि इससे उपजने वाले उत्तरों को स्वीकारने के अलावा उनके पास और कोई रास्ता भी नहीं होता था। चाहे ये उत्तर परोक्षतः कितने ही बेतुके क्यों न लगते हों। हां, तो हम उस प्रश्न की बात कर रहे थे, जो उन्होंने पेटेंट ऑफिस में रहते अपने आप से किया था। प्रश्न था, "अगर कोई व्यक्ति बिना किसी बाधा के स्वतंत्र रूप से गिरे तो उसे अपना भार महसूस ही नहीं होना चाहिए।" है न कितना सीधा-सा प्रश्न? लेकिन ज़रा ध्यान दें, तो टेढ़ा लगेगा।

ऐसा अक्सर कहा जाता है कि उन्होंने अकेले ही इस शताब्दी में भौतिकी के क्षेत्र में क्रांति ला दी। लेकिन हर नम्र और महान व्यक्ति की तरह आइंस्टाइन इस बात से इंकार करते रहे। और बराबर अपने पूर्ववर्ती, जैसे फैराडे, मेक्सवेल, लॉरेन्ज़ और पोंइकेर के योगदान को भी उचित सम्मान देते रहे। उन्होंने इस बात से भी इंकार किया कि उनके काम का कोई दार्शनिक आधार है। वे सदा यह मानते रहे कि उनके काम का आधार है भौतिक संसार की सटीक और तर्कसंगत व्याख्या। इसके अलावा कुछ भी नहीं। लेकिन फिर भी इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि उनके विचारों ने न सिर्फ भौतिक-शास्त्रियों बल्कि आम लोगों को भी प्रभावित किया। उनके कार्य का प्रभाव इतना व्यापक हुआ कि उसे किसी एक क्षेत्र से बांधना असंभव है। उनके विचारों ने विश्व की इस निश्चयवादी व्याख्या की जड़ें हिला दीं कि हर चीज़ की जगह सुनिश्चित व स्वयंभू नियमों के द्वारा ही तय हो सकती है। निश्चयवाद हमारे तटस्थ अवलोकन पर निर्भर था। यानी कि हमारा किसी वस्तु के प्रति अवलोकन तटस्थ हो सकता है। जबकि क्वांटम थ्योरी के अनुसार हमारा देखना भर ही किसी घटना को, उसके परिणाम को बदल देता है। हमारा देखना कभी भी तटस्थ या निरपेक्ष नहीं हो सकता। इस एक विचार ने तहलका मचा दिया। इसने दार्शनिकों को ही नहीं, बल्कि हर उस व्यक्ति को

सोचने के लिए प्रेरित किया जो ब्रह्मांड और ब्रह्मांड में अपने स्थान को लेकर आश्चर्यचकित है। इसलिए हम पाते हैं कि आइंस्टाइन के विचारों को केवल भौतिक-शास्त्र तक ही सीमित रखना उनकी गहनता को, गूढ़ता को नकारना है।

व्यक्तित्व के सामाजिक पहलू

अब तक तो हमने आइंस्टाइन के केवल वैज्ञानिक पहलू को ही देखा। उनके वैज्ञानिक कार्यों के व्यापक एवं गहरे प्रभाव को देखते हुए क्या यह ज़रूरी नहीं हो जाता कि हम उनको एक व्यक्ति के स्तर पर भी जानें। क्या हम विज्ञान को और उसकी खोजों को एकदम अवैयक्तिक और वस्तुनिष्ठ करार दे सकते हैं? वैज्ञानिक इतिहास तो हमें ऐसा करने से रोकता है। देखा जाए तो विज्ञान कभी भी समाज से कट नहीं सकता, अलग नहीं हो सकता। उसके परिणामों का तो समाज पर प्रभाव पड़ना ही है; चाहे उसके काम अपने आप में कितने ही व्यक्ति-स्वतंत्र और वस्तुनिष्ठ क्यों न हों। अंततः यह सब होता भी तो मनुष्य के लिए ही है। और मनुष्य यानी समाज की इकाई। तो फिर हम मनुष्य और समाज को यूं जुदा-जुदा क्यों करें? और ऐसा कर भी सकते हैं क्या, अगर चाहें भी तो?

कुछ विचार समाजवाद पर

आइंस्टाइन की वैज्ञानिक समझ, उनका राजनैतिक दृष्टिकोण और सबसे बढ़कर उनका प्रबल मानवतावाद इस एक कथन से स्पष्ट होता है जो उन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ ही वर्ष पूर्व सत्तर साल की उम्र में दिया, "....किसी भी ऐसी अर्थव्यवस्था, जो पूंजी के निजी स्वामित्व पर आधारित है, के दो मुख्य सिद्धांत होते हैं। पहला यह कि उत्पादन के साधन निजी संपत्ति होते हैं और उनके मालिक जैसा भी उचित समझें वैसा उनका उपयोग कर सकते हैं। दूसरा सिद्धांत यह कि श्रम अनुबंध मुफ्त में उपलब्ध होता है। हालांकि वास्तव में ऐसी कोई भी व्यवस्था नहीं होती जिसे हम इस हिसाब से शुद्ध पूंजीवादी समाज कह सकें। विशेषकर श्रमिक वर्ग ने लंबे राजनैतिक संघर्षों के ज़रिए कुछ प्रकार के कार्यों के लिए तो कम-से-कम इस मुफ्त श्रम अनुबंध का संशोधित एवं लाभकारी आकार पाने में सफलता पाई है। लेकिन फिर भी हम कह सकते हैं कि वर्तमान अर्थव्यवस्था शुद्ध पूंजीवादी व्यवस्था से कहीं बहुत ज़्यादा अलग नहीं है।

उत्पादन इसलिए नहीं किया जाता कि उसका कुछ उपयोग हो, बल्कि वह मूलत: फायदे के लिए ही किया जाता है। ऐसी व्यवस्था में इस बात का कहीं भी कोई प्रावधान नहीं होता कि हर इच्छुक और योग्य व्यक्ति काम पा सके, बेरोज़गारों की सेना हमेशा ऐसी व्यवस्था में बरकरार रहेगी। इसके अलावा एक मज़दूर हमेशा काम से निकाले जाने का डर पाले रहता है। तकनीकी विकास लोगों पर काम के बोझ को कम करने की बजाए बेरोज़गारों की इस सेना को बढ़ाने में ही मदद करता है। मुनाफा कमाने का उद्देश्य और पूंजीपतियों के बीच बढ़ती प्रतिद्वंदिता दोनों मिलकर पूंजी के संचय और उसके उपयोग में ऐसी अस्थिरता पैदा करते हैं जो मज़दूरों की आर्थिक निराशा को बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ती। निर्बाध प्रतिद्वंदिता श्रम के विशाल दुरुपयोग को जन्म देती है, और लोगों की सामाजिक चेतना को पंगु बनाती है। मैं इस पंगुता को पूंजीवाद की सबसे बड़ी बुराई मानता हूं। हमारी संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था इस बीमारी की शिकार है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था एक विद्यार्थी के मन में एक अतिरंजित प्रतिद्वंदी मानसिकता को जन्म देती है। इसी मानसिकता के कारण वह अपने उज्जवल भविष्य के लिए अर्जनशील सफलता को आवश्यक गुण समझने लगता है और मन-ही-मन उसकी पूजा करता है।

इन बुराइयों से निपटने के लिए हमारे पास एक ही उपाय है और वह है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना। ऐसी व्यवस्था की सहयोगी होगी वह शिक्षा व्यवस्था जो सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के अनुकूल होगी।"

यह सब जानते हैं कि आइंस्टाइन यहूदियों और उनके देश इज़राइल के अस्तित्व के प्रबल समर्थक थे। हालांकि वे रूढ़िगत हिसाब से बिल्कुल भी धार्मिक नहीं थे। उन्हीं के शब्दों में, बारह साल की उम्र में, "उस समय की लोकप्रिय वैज्ञानिक किताबें पढ़कर मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि बाइबल में छपी ज़्यादातर कहानियां कभी सच हो ही नहीं सकतीं।" यहूदियों के प्रति उनकी सहानुभूति का आधार भी धार्मिक नहीं था, और यह सहानुभूति इसलिए भी नहीं थी कि वे स्वयं एक यहूदी थे। बल्कि यह सहानुभूति, नाज़ियों द्वारा यहूदियों पर किए गए अत्याचारों का परिणाम थी। नाज़ियों से उन्हें सख्त घृणा थी। उनके खुद के रिश्तेदार और मित्र इन अत्याचारों के शिकार हुए। यही नहीं, वे स्वयं भी नाज़ियों की निंदा के शिकार हुए जब नाज़ियों ने उनके सापेक्षतावाद को यहूदी विज्ञान की संज्ञा दी। यह बात भी सर्वविदित है कि इज़राइल के प्रथम राष्ट्रपति चेम वाईज़मे के निधन के बाद उन्हें इस पद के लिए आमंत्रित किया गया था। लेकिन आइंस्टाइन ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया क्योंकि यहूदियों और इज़राइल के प्रबल समर्थक होने के बावजूद वे वहां की सरकार के कट्टर आलोचक थे।

आइंस्टाइन एक प्रबल शांतिवादी भी थे, और ताउम्र सैन्यवाद के कट्टर विरोधी बने रहे। फिर भी कई लोग उनके इस विरोधाभास को आसानी से पचा नहीं पाते कि वे उन लोगों में शरीक थे जिन्होंने सबसे पहले अमरीकी सरकार को एटम बम बनाने के लिए उकसाया। हालांकि उनके निकटतम सूत्रों के अनुसार उन्होंने ऐसा इसलिए किया था कि नाज़ी खुद एटम बम बनाने में लगे थे, और आइंस्टाइन हर हालत में इसे रोकना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने अमेरिकी सरकार को बम बनाने के लिए प्रेरित किया। यद्यपि यह सही है कि इसके बाद जो कुछ भी हुआ वह ठीक इसके विपरीत था। बम बनने के पहले ही युद्ध समाप्त हो चुका था, और जब बम बना भी तो उसका पहला प्रयोग जापान पर किया गया। यह बात भी अब स्पष्ट हो चली है कि इस बम को गिराने के पीछे अमेरिका का विश्व की अग्रणी शक्ति बनने का निहित स्वार्थ था। युद्ध बंद करवाना तो इसका एक बहाना बना। दिनों-दिन फैलते हुए कम्यूनिज़्म को देखते हुए अमेरिकी सरकार के लिए ऐसा करना ज़रूरी हो गया था। लेकिन इस घटना ने आइंस्टाइन को काफी दुख पहुंचाया। उन्होंने कहा भी, "इस पहले एटम बम ने न सिर्फ हिरोशिमा को ध्वस्त किया है, बल्कि इसने हमारी अब तक की उस राजनैतिक सोच के परखचे भी उड़ाए हैं, जो अब गल चुकी है।" उन्होंने अपनी चिरपरिचित

विशिष्ट शैली में, ऐसी विश्व सरकार की स्थापना की पुरजोर वकालत की जो समाजवादी विचारधारा पर आधारित हो। वरना, उन्होंने कहा कि "वह दिन दूर नहीं जब शीत युद्ध सारी मानवता का भविष्य दांव पर लगा देगा।" वर्तमान परिस्थितियों में हम उनके इस पूर्वाभास की प्रामाणिकता को नकार नहीं सकते।

युद्ध खत्म होने के बाद आइंस्टाइन धीरे-धीरे राजनैतिक मामलों में और भी मुखर होते गए। युद्ध विरोधी घोषणा पत्रों और विश्वव्यापी निरस्त्रीकरण के वे प्रबल समर्थक बने। यहां तक कि उन लोगों को – जो ऐसे युद्ध लड़ने के बजाए, जिनमें उनका विश्वास न हो, जेल जाना पसंद करते – नोबेल पुरस्कार देने की सिफारिश भी की। फिर भी उनके इन विचारों का गहरा व व्यापक प्रभाव पड़ा, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उनकी निगाह में एक राजनैतिक समस्या का समाधान कभी भी संपूर्ण नहीं हो सकता। इसका जो भी समाधान होगा वह एक समझौता भर ही होगा। और आप तो जानते ही हैं कि आइंस्टाइन और समझौता ये दो अलग-अलग छोर थे। उनका परस्पर मिलन कभी हो ही नहीं सकता था चाहे वह काम में हो या विचार में।

वे एक पारंपरिक क्रांतिकारी नहीं थे, क्योंकि उनका प्राथमिक उद्देश्य कभी भी भौतिक या राजनैतिक सत्ता को अपदस्थ करना नहीं रहा। दरअसल, भौतिक सत्ता उनकी नज़र में इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी कि उसे पलटने में अपना समय और ऊर्जा बरबाद करें। वे क्रांतिकारी ज़रूर थे लेकिन इस हिसाब से कि उनकी निगाह में सर्वोपरि सत्ता विवेक था, तर्क था, बुद्धि थी। और इसी सत्ता के द्वारा उनके विचारों और कार्यों का संचालन होता रहा।

सुबीर सरकार: पेशे से अंतरिक्ष -भौतिकशास्त्री। हाल में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शोध कर रहे हैं। स्रोत फीचर सेवा के शुरुआती दौर में एकलव्य के साथ जुड़े रहे।
अनुवाद: मनोहर नोतानी: अनुवाद कार्य में रुचि, भोपाल में रहते हैं।
यह लेख स्रोत फीचर के मार्च 1989 अंक से लिया गया है।

1 2 3 पाठ्यक्रम निर्माण के विविध आयाम

रश्मि पालीवाल

पिछले बीस सालों से एकलव्य में सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम के विभिन्न आयामों को समझने और कुछ नए रास्ते खोजने का प्रयास चल रहा है। इनमें से कुछ अनुभवों और विचारों की चर्चा यहां करूंगी।

कक्षा 1 से 5 तक एकलव्य ने प्राथमिक शिक्षा का एक पाठ्यक्रम विकसित किया था। कई सालों तक भाषा, गणित, कला, सृजनात्मकता, पर्यावरण, इतिहास, भूगोल, विज्ञान के पहलू इन्टीग्रेटेड रूप में पाठ्य सामग्री में संयोजित रखे गए। हाल ही में शिक्षकों के सुझावों और अन्य पाठ्य-क्रमों की समीक्षा करते हुए इस स्वरूप

को बदला गया है और कक्षा 4 व 5 में भाषा, गणित व पर्यावरण अध्ययन की सामग्री अलग-अलग संयोजित की गई है।[1]

कक्षा 9 और 10 के लिए हाल ही में विचार-विमर्श की प्रक्रिया शुरू हुई है पर यह अभी प्रारंभिक स्तर पर है और सामग्री विकास का काम अभी नहीं हुआ है।[2]

पूरे ही स्कूल पाठ्यक्रम में एकलव्य ने छात्र की सीखने की प्रक्रिया को मजबूत और संपन्न करने के उद्देश्य को केन्द्र में रखा है। सोचने, समझने, अभिव्यक्त करने की विभिन्न क्षमताओं को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए ही विषयवस्तु व सामग्री का चयन व उसका प्रस्तुतीकरण किया गया है।

इस मूल प्रयास को 'गोलाई' देने के लिए, व्यावहारिक तालमेल प्रदान करने के लिए कई उपयुक्त विषय शामिल ज़रूर किए गए – जैसे कक्षा 4 व 5 की पुस्तकों में राज्य के पाठ्यक्रम से तालमेल के लिए मध्य प्रदेश व भारत के अलग-अलग प्राकृतिक प्रदेशों की विषयवस्तु बढ़ाई गई।

पास और दूर का परिवेश

बच्चों के साथ हुए अनुभव कई तरह के हैं पर यहां एक खास सूत्र को पकड़ कर बात करूंगी और वो है, किस स्तर पर क्या अपेक्षाएं की जानी चाहिए। किसी भी कक्षा में खासकर कक्षा 6वीं, 7वीं तक, 30 से 50 % बच्चे ऐसे मिलते हैं, जिन्हें स्कूली तंत्र पढ़कर समझने और स्वयं लिखकर कुछ कहने की क्षमता तक नहीं पहुंचा पाया है। पाठ्यक्रम सुधारों की सीमाओं और स्कूली तंत्र की संस्थागत कमज़ोरी के कारण भी कक्षाओं में सीखने - सिखाने का माहौल पर्याप्त कारगर नहीं बन पाता और जहां उन छात्रों का सहयोग करना हो, जो व्यक्तिगत या सामाजिक परिस्थितियों के चलते विशेष ध्यान के हकदार हैं, तो यह कारगरता और भी कम हो जाती है। इस सीमा को ध्यान में रखते हुए ही आगे की बातचीत की जाएगी।

सामाजिक अध्ययन के संदर्भ में बच्चों के साथ हुए अनुभवों से यह बात समझना बहुत महत्वपूर्ण था कि पास के और दूर के परिवेश के बीच जो विभेद आमतौर पर पेश किया

---

1 शासन की अनुमति से एकलव्य का यह प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम ज़िला बैतूल के शाहपुर विकास खण्ड की समस्त 125 शालाओं में 1995 से लागू था। इस कार्यक्रम को जुलाई 2001 में शासन द्वारा समाप्त किया गया।

2 कक्षा 6, 7, 8 के माध्यमिक स्तर के लिए सामाजिक अध्ययन विषय के अंतर्गत एकलव्य द्वारा एक समग्र परिप्रेक्ष्य रखते हुए इतिहास, भूगोल व नागरिक शास्त्र खण्डों में सामग्री विकसित की गई जो कई अवसरों पर तीनों खण्डों के बीच जुड़ाव भी बनाती है।

जाता है, वो बहुत हद तक सही नहीं है। ऐसा नहीं है कि प्राथमिक शाला के छात्रों के लिए उनके आसपास की जानकारी रोचक होती है, व बढ़ते क्रम में प्रदेश, देश व विदेश की जानकारी बड़ी उम्र के छात्रों के लिए अर्थपूर्ण होती है। बच्चों की रुचि और जिज्ञासा हर चीज़ में होती है, पास की हो या दूर की। प्रो. कृष्ण कुमार भी अपनी पुस्तक 'शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व' में गौर करते हैं कि – "बच्चों की रुचि सभी तरह की चीज़ों में होती है... उनकी रुचि को किसी भी प्रकार के ज्ञान के बारे में जगाया जा सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे पेश किस तरह किया गया है। इसलिए क्या पढ़ाने लायक है और क्या नहीं है, यह सवाल बच्चों के दृष्टि कोण से विशेष प्रासंगिक नहीं है।"

परिचित चीज़ की चर्चा भी विमुख करने वाली हो सकती है, इसका अहसास हमें कई अनुभवों से हुआ। एक बार कक्षा 6 की हमारी पुस्तक[3] के पाठ 'पहाड़ पर बसा गांव – पाहवाड़ी' के बारे में बच्चों से मैं चर्चा कर रही थी। हमने पाठ का एक अंश पढ़ा जिसमें बताया गया था कि गांव की पथरीली, बलुआ मिट्टी वाली ढलानों पर क्यों कोदो, कुटकी व तिल जैसी फसलें होती हैं, तथा सोयाबीन क्यों नहीं होती। खेती-बाड़ी की ये बातें उस ग्रामीण स्कूल के छात्रों के लिए परिचित बातें ही थीं, यद्यपि वे उनके नहीं, थोड़ी दूर के एक गांव के बारे में थीं। यह पाठ पहले भी कक्षा में किया जा चुका था। मेरे साथ अंश पढ़ने के बाद जब बच्चों को यह लिखने को कहा गया कि ढलवां ज़मीन पर कोदो कुटकी क्यों उगाई जाती है, तो 60% छात्र इसका उत्तर नहीं लिख पाए। किसी कारण वह पूरी विषयवस्तु परिचित होने के बावजूद, उनके लिए स्वयं लिखते और पढ़ते वक्त अभेद्य बनी रही। ऐसे बहुत से अनुभव हैं जहां पुस्तक देखने का मौका होते हुए भी छात्र संक्षेप में, दो टूक शब्दों में लिखी जानकारी को नहीं पकड़ पाते, चाहे वो परिचित विषयवस्तु के बारे में हो। दूसरी तरफ जिन पाठों में विषयवस्तु का प्रस्तुतिकरण ऐसा बन

3 हमारी किताब से आशय एकलव्य संस्था द्वारा निर्मित सामाजिक अध्ययन की किताबों से है। 1986 से इस प्रयास में म.प्र. शासन का भी सहयोग रहा। म.प्र. शासन की अनुमति से 8 शासकीय शालाओं में एकलव्य द्वारा विकसित पाठ्यपुस्तकों का उपयोग नियमित पाठ्यपुस्तकों की तरह किया गया है। सन् 1999 से एकलव्य द्वारा इस कार्यक्रम को अधिक स्कूलों में पहुंचाने का प्रयास सक्रिय हुआ। म.प्र. शासन ने अगस्त 2002 में 8 स्कूलों में चल रहे प्रायोगिक कार्यक्रम को समाप्त कर दिया; साथ ही स्कूलों को यह अनुमति दी गई है कि वे एकलव्य की पाठ्यपुस्तकों को अनुपूरक पाठ्य सामग्री की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं।

पाया है कि उसके बारे में एक सशक्त व जीवन्त छवि निर्मित हो पाई है, (कहानियों के माध्यम से, अपने परिवेश से तुलना करने के माध्यम से आदि...) उनमें बच्चों के मन में अवधारणाएं बन पाई हैं। इस संबंध में एक और उदाहरण याद आता है। एकलव्य की कक्षा 8 की पाठ्यपुस्तक के पहले संस्करण में ब्रिटिश काल के पाठ अच्छी तरह से विकसित नहीं किए जा सके थे। वे संक्षेप में जानकारियों व तर्कों की मोटी रूपरेखा बताते चलते थे। तब हम पाते थे कि जहां आठवीं कक्षा के बहुत से छात्र मुगलकाल (जो समय के हिसाब से उनसे और ज़्यादा दूर था) की बातों को बेहतर समझ कर व्यक्त करने को तत्पर रहते थे, वहीं ब्रिटिशकाल की दो टूक जानकारियों को पढ़ते हुए निकल जाते थे, पर प्रश्न के उत्तर के रूप में उन्हें पहचान नहीं पाते थे।

कितनी अंतरंग पहचान

तो सवाल दूर व पास का नहीं – सवाल है कि हम विषयवस्तु से छात्र की कितनी अंतरंग पहचान करवा पाते हैं। यह कुछ वैसा ही है जैसा कविता की पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या करना। साहित्य का शिक्षण सिर्फ कविता की पंक्तियां कंठस्थ करने से पूरा नहीं समझा जाता – तो इतिहास भूगोल का शिक्षण तथ्यों को कंठस्थ कर लेने से कैसे पूरा हो जाता है? सामाजिक अध्ययन में भी हर 'तथ्य' की संदर्भ सहित व्याख्या करनी ज़रूरी है, तभी वह छात्र के लिए प्रासंगिक बन पाता है। कविता तो कंठस्थ करने को भी अपने छंद व लय के कारण आनन्दपूर्ण बनाती है, पर यह गुण इतिहास-भूगोल के तथ्यों में स्वयंमेव तो नहीं ही है। जब हम सामाजिक अध्ययन को प्रासंगिक व आनन्दपूर्ण बनाने के लिए तथ्यों के संदर्भ निर्मित करने लगते हैं, तो उसमें लगता है समय और ध्यान। बच्चों के साथ हुए सारे अनुभव संदर्भों और उनके लिए समय की मांग को रेखांकित करते प्रतीत होते हैं। जब संदर्भ बनते हैं, तो अवधारणाएं बनती हैं, और अभिव्यक्ति भी प्रेरित होती है। ब्रिटिशकाल के पाठ जब हमारे द्वारा बदले गए, विस्तृत छवियों को उकेरते हुए दुबारा लिखे गए तो आठवीं कक्षा के छात्र उनकी 'जानकारियों' से सहज सरोकार बना पाए, दो अलग युगों के बीच आए बदलाव की धारणा बना पाए। उदाहरण के लिए एक छात्र का जवाब यहां उद्धृत है। प्रश्न था, 'अंग्रेज़ों से पहले लोग जंगल का उपयोग कैसे करते थे और अंग्रेज़ों के शासन में जंगल का उपयोग कैसे करते थे? तुलना करो और अपने शब्दों में लिखो।'

छात्र का उत्तर है, उसके अपने शब्दों में, "अंग्रेज़ों से पहले लोग जंगल

का उपयोग खुल्लेआम करते थे। वहां से फल, लकड़ी, खेती करना ये सब वे अपने मन से करते थे तथा अंग्रेज़ों के शासन में वे उसका उपयोग खुल्लेआम नहीं कर पाते और वे लकड़ी लेने जाते तो उनको अंग्रेज़ के आदमी रोकते और जंगल में लकड़ी काटने से मना कर दिया और वे खेती जहां कहीं भी करते थे अब वे खेती अंग्रेज़ बांट कर देते थे और कहीं की ज़मीन उनके नाम लिख दी और अगर यदि वे फिर कहीं दूसरी जगह पर खेती करते तो वह उन्हें पकड़ ले जाते और उन्हें बंद कर देते थे।"

अतः पाठ्यक्रम निर्माण इस तरह किया जाना चाहिए कि तथ्यों के संदर्भों को प्रस्तुत करने का समय उपलब्ध हो सके।

इतना सब कहने के बाद, मुझे लगता है कि 'दूर' और 'पास' वाला मामला पूरी तरह खारिज नहीं हो जाता है। अपने निजी परिवेश की जानकारियों पर बच्चों की पकड़ मज़बूत होती है। इसलिए उसके आधार पर जल्दी ही विश्लेषण, वर्गीकरण, तर्क की क्रियाएं की जा सकती हैं। दूसरे परिवेश की जानकारियों को आत्मसात करने के पर्याप्त अवसर देने में ज़्यादा समय व प्रयास लगता है। ऐसे पर्याप्त अवसर दिए बिना उन परिवेशों के बारे में कल्पना करने, अनुमान लगाने, तर्क करने, वर्गीकरण करने, आदि के क्रिया-कलाप बहुत फलदाई नहीं हो पाते। इस फर्क को ध्यान में रखते हुए 'दूर' व 'पास' की विषयवस्तु का अनुकूल उपयोग पाठ्यक्रम में किया जाना चहिए।

अकेले करना, समूह में करना

दूर और पास के विभेद से शायद थोड़ा ज़्यादा गंभीर विभेद है लिखित और मौखिक का, व्यक्तिगत और सामूहिक का। समूह में मिलकर बातचीत करते हुए छात्र जो क्षमता दर्शाते हैं वो अकेले पढ़ कर, लिखित उत्तर देने के सिलसिले में दर्शाई क्षमता से अधिक होती है। जब किसी बात का सिर्फ ब्यौरा नहीं, पर विश्लेषण करना होता है, कार्यकारण संबंध ढूंढना होता है तब समूह में चर्चा के माहौल में छात्र अपनी क्षमताएं आगे बढ़ा पाते हैं। उदाहरण के लिए हमने पाया कि गांव के छठी कक्षा के बच्चे किसानों का वर्गीकरण करने का अभ्यास कर पाए। छोटा किसान, मध्यम किसान और बड़ा किसान कैसे परिभाषित किए जा सकते हैं – यह बात पाठ में कुछ उदाहरणों से प्रस्तुत की गई थी। इसके बाद बच्चों ने अपने-अपने परिवार की जानकारी अपनी टोली में बताई और चर्चा करके उन्होंने तय किया कि उनका परिवार किस वर्ग में शामिल माना जा सकता है व किस कारण से। ऐसे अभ्यास अकेले लिखते हुए वे कर लेते हैं, पर आधे-अधूरे ढंग से।

बच्चों के जीवन-अनुभव भी स्वाभाविक तौर से उनकी क्षमताओं पर असर डालते हैं। मुझे याद आता है कि 7वीं कक्षा के छात्रों के साथ मैं ठेकेदारी प्रथा से बीड़ी बनवाने के उद्योग की चर्चा कर रही थी, जिस पर वे पाठ पढ़ चुके थे। पाठ में मज़दूरों की तुलना इस आधार पर की गई है कि जिन्हें 'कार्ड' मिले हुए हैं व जिन्हें फैक्ट्री के मालिक से 'कार्ड' नहीं मिले हैं। बच्चे इस अन्तर को कुछ हद तक पकड़ने का प्रयास कर रहे थे – पर एक छात्र यह पूरी तुलना और उसका तर्क बड़ी ही सहजता से कर रहा था। वह खुद बीड़ी बनाने की मज़दूरी कर चुका था।

इसी तरह कई 'मुश्किल' सामाजिक मुद्दों पर मैंने पाया कि गांव के छात्र सटीक तर्क कर लेते हैं, शर्त यह है कि मुद्दा ऐसे प्रस्तुत हुआ हो कि उनके अनुभव के तारों को छू सके। और यह तब होता है जब हम दूसरे समाजों का अनुभव पूरी संजीदगी से छात्रों के लिए प्रस्तुत करते हैं, उनका सारांश या संक्षेपिका नहीं।

कैसी हो पाठ्यक्रम की रूपरेखा

जैसे-जैसे बच्चों के साथ अनुभव होते गए, पहली से दसवीं कक्षाओं तक क्या पढ़ाना चाहिए की एक रूपरेखा हमारे बीच उभरने लगी। पहली से तीसरी तक निस्सन्देह ज़ोर इस बात पर होना चाहिए कि बच्चे स्वयं सरलता से पढ़ कर समझ सकें, अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकें व अपने अनुभवों व अवलोकनों की छानबीन कर सकें। इस उद्देश्य से लोगों, जीवों और चीज़ों से जुड़े बिल्कुल छोटे, घटनाप्रद प्रसंग इस उम्र के लिए उपयुक्त विषय-वस्तु बनते हैं।

चौथी-पांचवीं में विषयवस्तु के प्रसंग घटनाओं के दायरे से उठकर और व्यापक बन सकते हैं। वे अलग-अलग परिवेशों के भौतिक जीवन को जीवन्त कहानियों व वर्णनों के ज़रिए प्रस्तुत कर सकते हैं।

छठवीं से आठवीं तक भौतिक जीवन के अलावा अलग-अलग परिवेशों के सामाजिक-राजनैतिक प्रसंग, संबंध तथा संस्थाएं विषयवस्तु का हिस्सा बनना शुरू कर सकती हैं। बहरहाल इन आयामों की प्रस्तुति ठोस सदर्भों से जुड़ी होनी चाहिए। चौथी-पांचवीं में शुरू ही किया गया समाजों के बीच तुलनात्मक अध्ययन व तर्क का सिलसिला आठवीं तक ज़्यादा ज़ोर के साथ जारी रहना चाहिए।

यह अभ्यास छात्रों के मन में अवधारणाओं की नींव डालने लगता है। 9वीं-10वीं में इसी स्तर से आगे बढ़ते हुए, परिभाषाओं और सिद्धांतों की खोज को गति दी जानी चाहिए, व्याख्याओं व मत-विमत के निर्माण

को गति दी जानी चाहिए। माध्यमिक स्तर तक भारत के इतिहास और दुनिया के विभिन्न देशों के भूगोल का संदर्भ-पूर्ण विश्लेषण कर लेने के बाद 9वीं-10वीं कक्षाओं में विश्व स्तरीय प्रक्रियाओं, सिद्धांतों और वर्गीकरणों का सूत्र छात्रों को पकड़ाया जा सकता है। यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि आठवीं तक ठोस संदर्भों में बनी अवधारणाओं के सहारे वे विश्व-व्यापी प्रकियाओं की असलियत का आभास कर पाएंगे।

यह एक स्थूल रूपाकृति है– पाठ्यक्रम के सोपानों की। हर चरण पर बीते चरण की उपलब्धियों को मजबूत करने और अगले चरण की चुनौतियों का अंदाज़ लेने का पुट सहज ढंग से बना ही रहना चाहिए। फिर विषय वस्तु और सामग्री की प्रकृति भी उपरोक्त रूपरेखा को प्रभावित करेगी ही।

पाठ्यक्रम निर्माण और उससे आगे

अभी तक जैसी चर्चा की गई है वैसे बच्चों की क्षमताओं और सीखने की प्रक्रियाओं के साथ आदरपूर्ण तालमेल बिठाते हुए पाठ्यक्रम निर्माण की कोशिश ज़रूर उसके बदनाम 'बोझ' और 'निरर्थकता' की समस्या को दूर कर सकेगी। किन्तु पाठ्यक्रम निर्माण का एक यही आयाम तो नहीं है। पहली बात तो यह कि ऐसी कोशिश में निहित है कि विषयवस्तु में तथ्यों की औपचारिक भरमार नहीं हो सकती। कोई जानकारी दी जाएगी तो उसके ठोस संदर्भ के साथ दी जाएगी। स्कूली दिनचर्या की समय सीमा का यह तकाज़ा बनेगा ही कि एक हद से ज़्यादा विषयवस्तु छात्रों के सामने प्रासंगिक तरीके से प्रस्तुत नहीं की जा सकती। तब, उस विषयवस्तु का क्या स्थान रहेगा जो पाठ्यक्रम में स्थान नहीं पा सकेगी? यदि हम इस प्रश्न का विश्वसनीय हल नहीं निकाल सके, तो पाठ्यक्रम सुधार के प्रयासों पर हमेशा आंच आती रहेगी। इसलिए, स्कूली समय की सीमाओं को लांघना होगा और ज़्यादा-से-ज़्यादा विषयों पर प्रासंगिक साहित्य सृजन को व पुस्तकालयों की सक्रियता को उतना ही महत्व देना होगा जितना हम स्कूली समय के भीतर के पाठ्यक्रम को दे रहे हैं। हम जब विपुल साहित्य सृजन और पुस्तकालय विकास के काम को गंभीरता देंगे, तभी शायद औपचारिक पाठ्यक्रम के लिए किए गए विषयों के अपने चुनाव की सदाशयता के बारे में लोगों को विश्वस्त कर पाएंगे और शिक्षा की व्यापकता के साथ अपना संबंध भी हरा रख पाएंगे। अन्यथा, 'यह क्यों जोड़ा, वह क्यों छोड़ा' की राजनैतिक खींचातानी छात्र की दृष्टि से पाठ्यक्रम निर्माण के प्रयासों को हमेशा पछाड़ती रहेगी। पाठ्यक्रम निर्माताओं को यह विश्वास दिलाना

चाहिए कि वे किसी विषय को कम महत्वपूर्ण नहीं मानते, पर हर विषय को उसका महत्व देने के लिए उसे औपचारिकता के नाते 'छू' भर देना वास्तव में उसे महत्व देना नहीं है।

बच्चों को क्या पढ़ाया जाना चाहिए

'कब-क्या पढ़ाएं' इस सवाल का जवाब एक और गहरे पहलू पर टिका है – कि पाठ्यक्रम किन सामाजिक-राजनैतिक मूल्यों पर टिका है। यह एक स्वतंत्र रूप से महत्वपूर्ण प्रश्न है। उदाहरण के लिए एन.सी.ई.आर.टी. के नेशनल करीक्यूलम फ्रेमवर्क (NCF) के नेशनल करीक्यूलम को लेकर हाल में जो बहस छिड़ी हुई है, वह इसी मूल प्रश्न पर टिकी है। NCERT का यह एन.सी.एफ. नामक दस्तावेज़ पाठ्यक्रम का बोझ कम करने, छात्रों की सीखने की प्रक्रिया को महत्व देने, विषयवस्तु को संदर्भ पूर्ण व प्रासंगिक बनाने की बात करता है। ये सारी बातें अलग-अलग राजनैतिक दृष्टिकोणों को प्रतिपादित करते हुए भी की जा सकती हैं। यह संदेह है, और उसके कारण हैं, कि एन.सी.एफ. में छात्रहित की ये सारी धारणाएं हैं, पर वे जिस दृष्टि से विषयवस्तु का चुनाव करेंगी, वह दृष्टि भारत के संवैधानिक मूल्यों को संरक्षित नहीं करती है। इस बात का फैसला कौन करेगा? सर्वोच्च न्यायालय के पास मामला गया और उसने एन.सी.एफ. के पक्ष में फैसला सुनाया। किन्तु इस फैसले से अलग मत भी समाज में व्याप्त हैं।

एन.सी.एफ. के निर्माताओं को समाज में प्रचलित अन्य परिप्रेक्ष्यों के साथ जूझना ही होगा – और यही बात किसी भी पाठ्यक्रम के लिए लागू होती है। समाज में प्रचलित विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से जूझने से जो परिणाम निकलता है, वह भी तय करता है कि बच्चों को क्या पढ़ाया जाना चाहिए। यह परिणाम देश के संविधान की मूल भावनाओं से सामीप्य रखे, इसके लिए हम सभी को प्रयासरत रहना होगा।

रश्मि पालीवाल: एकलव्य संस्था के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़ी शैक्षणिक मुद्दों पर सतत लेखन।

कहानी

सदानंद की नन्हीं दुनिया

चित्र: विप्लव शशि

सत्यजीत रे

बच्चों की दुनिया निराली है। वहां खुश दिखने के लिए हंसना, मज़ाक करना ही एक मात्र विकल्प नहीं है उनके पास। अपनी इस दुनिया में वो अपने लिए कभी खुशियां खोज निकालते हैं तो कभी गम भी।

सदानंद भी यही मानता था कि गधों की तरह हंसते रहना ही खुश दिखने का एक मात्र तरीका नहीं है। सदानंद को चींटियों

को निहारने में बेहद मज़ा आता था।

अपनी बीमारी के दौरान उसकी चींटियों से अच्छी-खासी दोस्ती हो गई। सदानंद की दोस्त चींटियां न सिर्फ उससे बतियाती थीं, बल्कि अपनी कुश्तियों से उसका मन भी बहलाती थीं।

इसी दौर में सदानंद ने बिस्तर पकड़ लिया और उसे अस्पताल में भर्ती करवाना पड़ा। वहां डॉक्टर ने उसके दो दोस्तों लाल बहादुर और लालचंद के साथ बदसलुकी की...... फिर आगे क्या हुआ? पढ़िए बच्चों की दुनिया से रुबरु करवाती इस कहानी में।

आज मैं काफी प्रफुल्लित हूं। इसलिए यह अच्छा समय है आपको सब कुछ बताने का। मैं जानता हूं आप मुझ पर विश्वास करेंगे। आप हमारे यहां के लोगों जैसे नहीं हैं। वे तो मुझ पर सिर्फ हंसना जानते हैं। वे समझते हैं मैं यह सब खुद गढ़ता हूं। इसलिए मैंने उनसे बात करना ही छोड़ दिया है।

दोपहर का समय है इसलिए मेरे कमरे में कोई और नहीं है। वे दोपहर बाद ही आएंगे। अभी यहां केवल दो जने हैं – मैं और मेरा दोस्त लाल बहादुर। लाल बहादुर सिंह! ओह, कल मैं उसे लेकर कितना चिंतित था। मुझे लगता था अब वो कभी भी मेरे पास वापस न आएगा। लेकिन वो काफी होशियार है इसलिए साफ बच निकला। कोई और होता तो कब का निपट चुका होता।

अरे, मैं भी कितना पागल हूं। मैंने आपको अपने दोस्त का नाम तो बता दिया लेकिन मेरा अपना नाम नहीं बताया। मैं हूं सदानंद चक्रवर्ती। किसी दाढ़ीवाले बूढ़े आदमी की सी छवि उभरती है। है ना! जबकि अभी तो मैंने मात्र 13 बसंत देखे हैं। वैसे इसमें मैं कर भी क्या सकता हूं अगर मेरा नाम इतने पुराने फैशन का है। आखिर ये नाम मैंने तो चुना नहीं था। यह तो मेरी दादी की करामात है।

अगरचे उन्हें पता होता कि यह नाम मेरे लिए कितनी मुसीबतें खड़ी करने वाला है तो यकीनन वो मुझे किसी और नाम से पुकारती। उन्हें पता भी कैसे चलता कि लोग मुझे कह-कहकर सताएंगे कि "तुम इतने उदास क्यों दिखते हो, जब तुम्हारा नाम 'खुशमिजाज़' है?" बेवकूफ लोग! समझते हैं गधे की तरह हंसते रहना ही खुश दिखने का एकमात्र तरीका है। वे जानते नहीं कि ढेरों तरह से खुश

चित्र पुलक बिस्वास

रहा जा सकता है। उन सबके लिए मुस्कुराना तक ज़रूरी नहीं होता। अब मान लो, ज़मीन से फूटी एक छोटी-सी टहनी है जिसकी नोक पर एक टिड्डा बार-बार उड़कर बैठ रहा है। यकीनन इसे देखना आपको खुशी देगा, लेकिन अगर आप मुंह फाड़-फाड़कर हंसने लगें तो सब समझेंगे कि आप कुछ सरक गए हैं। मेरे खिसके हुए अंकल की तरह। मैंने उन्हें कभी देखा तो नहीं लेकिन सुना ज़रूर है कि वे हमेशा हंसते रहते थे। यहां तक कि जब उन्हें चेन से बांधना पड़ा तो उन्हें यह सब कुछ इतना अजीब लगा कि उनके तो हंसते-हंसते पेट में बल ही पड़ गए।

तो जनाब सच यह है कि मैं उन चीज़ों में लुत्फ ढूंढ लेता हूं जहां बाज़ लोगों की निगाह तक नहीं ठहरती। यहां तक कि मैं बिस्तर पर लेटे-लेटे भी ऐसी चीज़ों को ढूंढ लेता हूं जो मुझे खुशी देती हैं। कभी-कभी एक बिनौला खिड़की से होता हुआ कमरे में उड़ आता है। छोटी-छोटी चीज़ें जिन्हें हवा की नाज़ुक सांसें तक इधर-उधर बिखरा जाती हैं। कितना खुशनुमा नज़ारा होता है यह। वो उड़ते हुए आप तक आए और आप फूंक पर बैठा उन्हें वापस ऊपर हवा में पहुंचा आएं और अगर कोई कौआ आपकी खिड़की पर जम जाए तो समझो सर्कस का मसखरा ही वहां आ बैठा है। जब भी कोई कौआ मेरे बगल में आ बैठता है तो मैं एकदम जड़ हो जाता हूं – सावधान – और कनखियों से उसके मसखरेपन के मज़े लेता हूं।

लेकिन अगर आप मुझसे पूछें कि किस चीज़ में मुझे सबसे ज़्यादा मज़ा आता है तो मेरा जवाब होगा, चींटियों को निहारने में। यह सही है कि इसमें सिर्फ मज़ा ही नहीं है बल्कि और भी .... नहीं, नहीं – इस वक्त सब कुछ बताकर मुझे आपका मज़ा किरकिरा नहीं करना। बेहतर होगा कि मैं शुरू से शुरू करूं ...।

तकरीबन साल भर पहले की बात है। मैं बुखार से तप रहा था और यह कोई नई बात न थी। मुझे ठण्ड कुछ जल्दी ही लग जाती और फिर बुखार आ धमकता। मां का मानना है कि यह अधिकांश समय घर से बाहर घास पर बैठे रहने का नतीजा है। हमेशा की तरह, बिस्तर पर पड़ने के पहले एक-दो दिन तो मज़े से बीते। सर्दी और खुमारी का मिला-जुला उम्दा अहसास। इसमें स्कूल न जाने की अतिरिक्त खुशी का छौंक भी था। मैं बिस्तर पर लेटा खिड़की के बाहर अकाव की झाड़ी पर एक गिलहरी का चढ़ना देख रहा था। तब मां ने मुझे एक कड़वा सिरप पीने को दिया। मैंने अच्छे बच्चे की तरह उसे पिया और फिर गिलास में पानी भरा। कुछ पिया कुछ खिड़की से बाहर की तरफ उछाल दिया।

कम्बल को अपने चारों ओर लपेट कर मैं आंखें बंद करने ही वाला था कि मैंने कुछ अजीब-सा नज़ारा देखा। पानी की कुछ बूंदें खिड़की की चौखट पर गिर पड़ी थीं और इन बूंदों में से एक बूंद में एक काली चींटी डूबने से बचने की भरसक कोशिश में लगी थी। गौर से देखने पर मुझे अचानक लगा जैसे चींटी अब चींटी न रही हो, इंसान बन गई हो। दरअसल मुझे जोंटू के जीजे की याद हो आई जो मछली पकड़ते वक्त तालाब में फिसल गया था। तैरना नहीं जानते थे सो डूबने से बचने के लिए बेतरतीब ढंग से तेज़-तेज़ हाथ पैर मार रहे थे। अंततः जोंटू के बड़े भाई और उनके नौकर नरहरी ने मिलकर उन्हें बचा लिया था।

उस घटना के याद आते ही मुझमें चींटी को बचाने की उत्कट इच्छा हो आई। बुखार की परवाह न कर मैं बिस्तर से कूदा और कमरे से बाहर पिता की स्टडी की तरफ दौड़ पड़ा। वहां उनके कागज़ों में से सोख्ते कागज़ का एक टुकड़ा फाड़ा और वापस कमरे में भागा चला आया। बिस्तर पर कूदकर मैंने झट से उस सोख्ते कागज़ का एक सिरा पानी की बूंद से छुआ दिया। देखते ही देखते कागज़ ने सारा पानी पी लिया।

अचानक आई इस रहमत ने एक पल के लिए चींटी को बौरा दिया। वो कुछ देर इधर-उधर होती रही। फिर चौखट से दूर पानी के पाईप के पास कहीं गायब हो गई। उस दिन, फिर चौखट पर और कोई चींटी न आई। दूसरे दिन बुखार बहुत तेज़ हो गया। दोपहर के करीब मां आई। 'खिड़की की तरफ क्यों ताक रहे हो? आंखें बंद कर सोने की कोशिश करो।' मां को खुश करने के लिए मैंने आंखें मूंद लीं। लेकिन जैसे ही वो गई मैं पाईप की ओर फिर से ताकने लगा।

दोपहर के वक्त जब सूरज अकाव के पेड़ के पीछे था, मैंने पाइप के मुख

से झांकते हुए एक चींटी को देखा। अचानक वो फुर्ती से बाहर आई और खिड़की की चौखट पर जल्दी-जल्दी घूमने लगी। हालांकि सभी काली चींटियां एक सरीखी दिखती हैं, जाने क्यों मुझे महसूस हुआ यह वही कल वाली चींटी है जो डूबने के कगार पर थी। मेरे कल के दोस्ताना व्यवहार के कारण आज वो मुझसे मिलने आई है। मैं पहले ही से तैयार था। अपने तकिए के नीचे मैंने चीनी की एक पुड़िया रख छोड़ी थी। मैंने उसे खोला और चीनी का एक बड़ा-सा दाना चौखट पर रख दिया। चींटी कुछ चौकन्नी-सी होती दिखी। कुछ पल ठहरी। फिर धीरे-धीरे सावधानी से चीनी की ओर बढ़ने लगी। और फिर सब तरफ से उसे अपने सिर से धकियाने लगी। अचानक उसने नाली की ओर रुख किया और गायब हो गई।

मैं सोच में पड़ गया – अजब मामला है! मैंने उसे उतना बड़ा चीनी का दाना दिया और वो उसे छोड़कर चल दी। अगर खाना नहीं चाहिए था तो फिर वो यहां आई ही क्यों?

कुछ देर में डॉक्टर साहब अवतरित हुए। नाड़ी देखी, जुबान देखी, स्टेथो-स्कोप को मेरी छाती व पीठ से लगाया तथा कुछ और कड़वे घोल दे गए। उनका कहना था कि बुखार अब दो दिन का ही मेहमान था। इस खबर ने मुझे ज़रा भी खुशी न दी। बुखार नहीं यानी स्कूल हां और स्कूल हां, यानी चींटियां नहीं (देख पाना)। खैर, डॉक्टर के जाते ही मैं खिड़की की ओर मुड़ा और मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। नाली से काली चींटियों का पूरा का पूरा हुजूम चौखट की ओर मार्च कर रहा था। ज़ाहिर है उसकी अगुआ तो वही चींटी होगी। उसी ने इन्हें चीनी के बारे में बताया होगा। उन्हें इस तरह काम करता देख मैं इन चींटियों के कौशल को खुद देख पाया। उन सबने एक-दूसरे को पकड़ एक चेन-सी बनाई और उस दाने को पाईप की तरफ धक्का देने लगीं। मैं बता नहीं सकता वो सब कितना अजीब और मज़ेदार था। मैं कल्पना करने लगा। अगर वे कुली होतीं वो इतना भारी वज़न उठाते वक्त ज़रूर चिल्ला रही होतीं – दम लगाके हैशा, ज़ोर लगाके हैशा....।

बुखार के बाद का स्कूल कुछ दिनों तक बहुत बोर था। मुझे बार-बार खिड़की की चौखट का ख्याल आता। वहां हर दोपहर चींटियां आती होंगी। हर सुबह स्कूल जाने से पहले मैं वहां थोड़ी-सी चीनी रख जाता और लौटने पर उसे नदारद पाता। पहली कक्षा में मेरी सीट क्लास के बीचोंबीच थी। मेरे पास शीतल बैठता था। एक दिन मुझे थोड़ी देर हो गई। क्लास में पहुंचा तो मेरी सीट पर फणि को बैठा पाया। कोई विकल्प न था सो आखिरी सीट

पर दीवार के पास जा बैठा।

खाने की छुट्टी से ठीक पहले का पीरियड इतिहास का होता। अपनी पतली पैनी-सी आवाज़ में इतिहास के अध्यापक हराधन बाबू हनिबल की बहादुरी के किस्से बता रहे थे। हनिबल ने इटली पर चढ़ाई के लिए कार्थे से फौज की अगुवाई की और आल्प्स पर्वत पार किया। यह सुनते ही अचानक मुझे अहसास हुआ ज्यों हनिबल की फौज क्लास में है और मेरे काफी करीब से मार्च कर रही है।

मैंने अपने आसपास देखा और आंखें पीछे की दीवार पर कुछ खोजने लगीं। दीवार के नीचे छोटी काली चींटियों की लंबी कतार चली जा रही थी। वैसे ही जैसे कोई शौर्यपूर्ण सेना रणभूमि को कूच करती है। ध्यान से देखने पर नीचे फर्श के पास दीवार पर एक दरार पाई, जिससे होकर चींटियां बाहर जा रही थीं। खाने की छुट्टी की घण्टी बजते ही मैं भाग कर अपनी कक्षा के पीछे गया। वहां एक छेद से चींटियां बाहर आ रही थीं। घास पर से होकर वे अमरूद के पेड़ की तरफ बढ़ रहीं थीं।

चींटियों का पीछा करता हुआ मैं अमरूद के पेड़ की जड़ के पास पहुंचा और वहां एक दुर्ग सरीखा कुछ पाया। वो जो भी चीज़ थी उसे देखकर मेरे मन में यही शब्द आया। वह मिट्टी का एक टीला था जिसके तले में एक छोटा-सा छेद था। यहीं से चींटियां आना-जाना कर रही थीं। मेरे भीतर उस दुर्ग के अंदर झांकने की चाहत पनपी। मेरी जेब में लकड़ी थी, जिसकी नोक से मैं बड़े ध्यान से उस ढेरी को

खोदने लगा। पहले-पहले तो मुझे कुछ न दिखा। लेकिन थोड़ा और खोदने पर मैं अवाक रह गया। उस टीले के अंदर अनगिनत छोटे-छोटे कमरे बने थे और एक कमरे से होकर दूसरे कमरे को जाती एक भूल भुलैया। अदभुत! नन्हीं-नन्हीं चींटियों ने अपने नन्हें-नन्हें हाथों-पैरों से भला कैसे यह दुर्ग रचा होगा। इतनी होशियार वे कैसे हो चलीं? क्या उनके भी कोई स्कूल हैं जहां उन्हें सिखाया जाता है? क्या वे भी किताबों से पढ़ती होंगी, चित्र खींचती होंगी, चीज़ें बनाना सीखती होंगी? इसका मतलब कि वे हम इंसानों से अलग नहीं हैं, सिवाय दिखने के। ऐसा कैसे कि वे अपना घर खुद बना लेती हैं जबकि शेर, हाथी, भालू, घोड़े ऐसा नहीं कर पाते? यहां तक कि मेरा पालतू कुत्ता भूलो भी ऐसा नहीं कर सकता। यह सही है कि चिड़ियां घोंसले बनाती हैं लेकिन एक घोंसले में कितनी चिड़ियां रह सकती हैं? क्या चिड़ियां इतना बड़ा महल बना सकती हैं जिसमें वे हज़ारों की तादाद में रह सकें।

चूंकि मैंने उनके घर का एक हिस्सा बिगाड़ दिया था इसलिए मैंने चींटियों में एक हलचल पाई। मुझे बहुत बुरा लगा। मुझे लगा कि मुझे इसकी भरपाई कुछ अच्छा काम करके करनी होगी, नहीं तो वे मुझे अपना दुश्मन मान बैठेंगी, जो मैं नहीं हूं। मैं सचमुच उनका दोस्त था। अगले दिन मैं मिठाई का एक टुकड़ा, जो मां ने मुझे खाने के लिए दिया था, साल के पत्ते में लपेट स्कूल ले आया। स्कूल शुरू होने से पहले ही मैंने चींटियों की बाम्बी के पास मिठाई का टुकड़ा रख दिया। चींटियों को भोजन की तलाश में बहुत दूर जाना पड़ता होगा; आज उन्हें ऐन दहलीज़ पर खाना मिल जाएगा।

कुछ ही हफ्ते में गर्मियों की छुट्टियां शुरू हो गईं और चींटियों से मेरी दोस्ती परवान चढ़ने लगी। मैं बड़ों से चींटियों के व्यवहार बाबत बात करता, लेकिन वे ध्यान ही न दें। तिस पर उनका हंसना मुझे उनसे और दूर ले जाता। मैंने तय कर लिया कि किसी से कुछ न कहूंगा। मैं जो भी करता हूं अकेला ही करूंगा। और जो भी सीखूंगा-जानूंगा खुद तक ही रखूंगा।

एक दोपहर मैं पिंटु के घर के अहाते की दीवार के करीब बैठ लाल चींटियों द्वारा बाम्बी का बनाया जाना देख रहा था। लोगों का कहना है आप लाल चींटियों के पास ज़्यादा देर नहीं बैठ सकते क्योंकि वे काट लेती हैं। मुझे भी लाल चींटियों ने बहुत काटा है लेकिन मैंने पाया कि वे पिछले कुछ समय से ऐसा नहीं कर रही हैं। इसी के चलते मैं बेफिक्री से उन्हें देख रहा था। अचानक मैंने चीकू को लंबे-लंबे डग भरते वहां आते देखा। मैंने अब तक चीकू का ज़िक्र नहीं किया है।

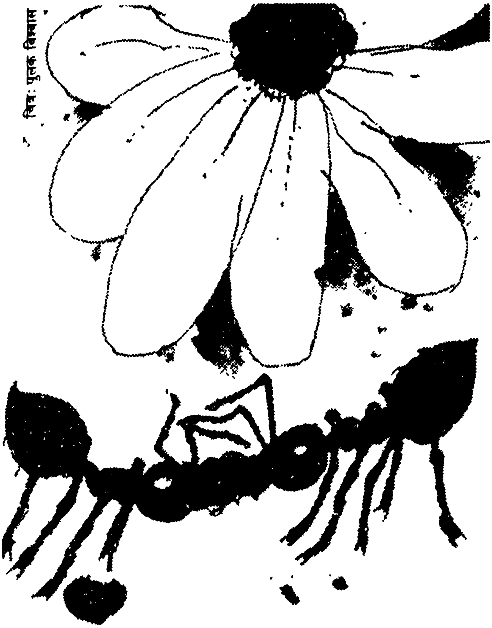

उसका असली नाम श्रीकुमार है। पढ़ता तो वो मेरी ही कक्षा में है लेकिन मुझ से कुछ बड़ा होगा। उसके होठों के ऊपर मूंछों की एक धुंधली-सी लकीर जो दिखती है। चीकू की दादागिरी की वजह से कोई भी उसे पसंद नहीं करता। आमतौर पर मैं उससे पंगा नहीं लेता, मुझसे तगड़ा जो है।

चीकू ने मुझे देखा और गला फाड़कर ज़ोर से चिल्लाया, "अरे ओ पागल गधे, वहां ज़मीन पर उकड़ू बैठे क्या कर रहे हो?"

मैंने उस पर कोई ध्यान न दिया, वो मेरी तरफ आने लगा। मैंने अपनी आंखें चींटियों पर ही लगाए रखीं। उसने मुझे धकियाते हुए कहा, "बेटा इरादे क्या हैं? मुझे यह एक नज़र भी नहीं भाता।"

मैंने कुछ भी छिपाने की कोशिश न की और जो भी कर रहा था सब बता दिया।

चीकू ने मुंह बनाया और कहा, "तुम्हारा मतलब है कि तुम चींटियां देख रहे हो? इसमें देखने जैसा क्या है? और क्या चींटियां तुम्हारे घर में नहीं हैं कि तुम सब कुछ छोड़-छाड़कर यहां आए हो।"

मुझे बहुत गुस्सा आया। मन ही मन सोचा – तुम्हें क्या मतलब, मैं कुछ भी करूं। तुम कौन होते हो दूसरों के मसले में टांग अड़ाने वाले। "मैं इसलिए देख रहा हूं क्योंकि मुझे इसमें मज़ा आता है। तुम चींटियों के बारे में कुछ नहीं जानते। तुम अपना रास्ता नापो, मुझे आकर परेशान क्योंकि करते हो?" चीकू गुस्सैल बिल्ली की तरह गुर्राया, "तो तुम्हें चींटियां देखना अच्छा लगता है। अब ले मज़ा ... ले ... ले और ले ..... " इससे पहले कि मैं कुछ कर या कह पाता चीकू ने

अपनी एड़ी के तीन ज़ोरदार वारों से चींटियों की बाम्बी को रौंद दिया। कम से कम पांच सौ चींटियां कुचली गई होंगी।

एक क्रूर अट्टाहास के बाद चीकू जैसे ही मुड़ा, अचानक मेरे अंदर एक अजब सी ऐंठन उठी। मैं चीकू की पीठ पर सवार हो गया, उसके बाल कसकर पकड़े और उसके सिर को पिंटू की चारदीवारी पर चार-पांच बार दे मारा। उसके बाद उसे छोड़ दिया।

चीकू बुक्का फाड़कर रोता हुआ चलता बना। घर पहुंचा तो पता चला कि मेरे पहले ही चीकू की शिकायत वहां पहुंच गयी है। मुझे अचरज हुआ जब मुझे देखते ही मां ने न डांटा और न ही पीटा। शायद उन्हें चीकू पर यकीन न आया, मैंने आज तक किसी पर हाथ जो नहीं उठाया था। उलटे मां चीकू को लेकर मेरे डर से वाकिफ थी। लेकिन जब मां ने मुझसे माज़रा जानना चाहा तो मैं झूठ न बोल सका। "यानी तुमने सचमुच उसके सिर को दीवार से भिड़ा दिया।" मां चकित थी। "हां ... मैंने ऐसा किया .... और चीकू ही क्यों, जो कोई भी चींटियों की बाम्बियों को कुचलेगा, मैं उसका यही हाल बनाऊंगा।"

मेरे इस जवाब ने मां का पारा इतना चढ़ा दिया कि उन्होंने मुझे एक थप्पड़ जड़ दिया। वो शनिवार का दिन था। पिताजी उस दिन दफ्तर से जल्दी घर आते हैं। मां से पूरा किस्सा सुनते ही उन्होंने मुझे कमरे में बंद कर दिया। यह अलग बात है कि मेरे गाल थप्पड़ की मार से चिनचिना रहे थे, लेकिन मुझे अपने किए पर कोई अफसोस न था। हां, चींटियों के लिए अफसोस ज़रूर था। एक बार साहिबगंज में जहां मेरा रिश्तेदार परिमल रहता है, दो रेलों की भिंडत हुई जिसमें तीन सौ लोग मारे गए थे। और चीकू को इतनी सारी चींटियों को मारने में सिर्फ कुछ सैकण्ड लगे।

कितना गलत था यह सब, कितना कितना.... गलत।

बिस्तर पर लेट आज के घटनाक्रम पर सोचते-सोचते अचानक कुछ ठण्ड-सी महसूस हुई और मुझे कम्बल ओढ़ लेना पड़ा। और जाने कब मैं नींद के आगोश में दुबक गया। अचानक एक अजीब-सी आवाज़ ने मुझे झंझोड़ दिया। एक महीन, पैनी, बहुत सुरीली, गाने की तरह एक लय में ऊपर-नीचे होती। मेरे दोनों कान खड़े हो गए, चारों तरफ देखा लेकिन सुर का स्रोत न जान सका। हो सकता है बहुत दूर कोई गा रहा हो। लेकिन आज से पहले मैंने ऐसा गाना कभी नहीं सुना था।

अरे, यह क्या है। जब मैं यह अजीब-सी आवाज़ सुन रहा था एक चींटी पाईप से बाहर निकल आई थी।

इस बार मैंने उसे पहचानने में ज़रा भी भूल न की। यह वही चींटी थी जिसके लिए मैं तिनके का सहारा बना था। मेरी तरफ मुंह कर आगे की टांगों को सिर तक उठा वो अब मुझे सलाम कर रही थी। इस श्यामवर्ण जीव को मैं क्या नाम दूं? काली? कृष्ण? मुझे सोचना होगा? दोस्त बेनाम कैसे हो सकता है।

मैंने खिड़की की चौखट पर अपना हाथ रख दिया; हथेली ऊपर की ओर थी। चींटी ने अपने सिर से टांगें हटाकर नीचे कर लीं और धीरे-धीरे मेरे हाथ की तरफ बढ़ने लगी। मेरी छोटी ऊंगली पर चढ़ वो मेरी हथेली की लकीरों पर दौड़ा-दौड़ी करने लगी। दरवाज़े पर अचानक हुई आहट ने मुझे चौंका दिया। चींटी भी झट कूद पाईप में दुबक गायब हो गई।

मां ने मुझे दूध का ग्लास पकड़ाया। हल्के से मेरा माथा छुआ। फिर से बुखार चढ़ आया था। अगली सुबह डॉक्टर आया। मां बोली, "रात भर बेचैन रहा, बार-बार 'काली', 'काली', बड़बड़ाता रहा है।"

मां मेरी नई दोस्ती से अनभिज्ञ थी इसलिए शायद यह समझ रही थी कि मैं काली का नाम जप रहा था। डॉक्टर ने जब मेरी पीठ पर स्टेथोस्कोप रखा, फिर से वह अजीबो-गरीब आवाज़ मेरे कानों में पड़ी। कल से कुछ ज़्यादा ऊंची और भिन्न लय में वह आवाज़ खिड़की की तरफ से आती लग रही थी। चूंकि डॉक्टर ने हिलने को मना किया था मैं उस ओर अपना सिर नहीं घुमा सकता था। डॉक्टर की जांच खत्म होते ही मैंने तुरंत खिड़की की ओर निगाह डाली। नमस्ते .....। इस बार एक बड़ी चींटी थी। वो भी मुझे सलाम कर रही थी। तो क्या, अब सारी चींटियां मेरी दोस्त हैं? क्या यही चींटी गाना गा रही थी?

लेकिन मां ने गाने बाबत कुछ न कहा। तो क्या उन्हें वह सुनाई नहीं पड़ा? मैंने अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए उनकी तरफ सिर घुमाया तो उन्हें उस चींटी को घूरते पाया। उनकी आंखों में खौफ तैर रहा था। अगले ही पल उन्होंने मेज़ से मेरी गणित की किताब उठाई; मुझ पर कुछ झुकीं और किताब की तेज़ मार से उस चींटी को कुचल डाला।

उसी पल सारे सुर शांत हो गए। "पूरे घर में चींटियां रेंग रही हैं। ज़रा सोचो कोई तुम्हारे कान में घुस जाती तो।" इंजेक्शन लगाकर डॉक्टर चला गया। मैंने मरी हुई चींटी को देखा। वो एक सुरीला गाना गाते-गाते मारी गई थी। मेरे एक चाचा इंद्रनाथ की तरह। वे शास्त्रीय गीत गाते थे जो मुझे कम ही समझ आते थे। एक दिन वे तानपुरा बजाते हुए गा रहे थे कि अचानक

चल बसे। जब उन्हें श्मशान घाट ले जाया गया, तो कीर्तन गाने वालों का हुजूम जुलूस के रूप में भगवान हरी की स्तुति में भजन गा रहा था। मैंने भी वह सब देखा; हालांकि उस वक्त मैं बहुत छोटा था। लेकिन मुझे आज भी सब कुछ याद है। आज एक अजीब वाक्या हुआ। इंजेक्शन नींद को मेरे पास ले आया और नींद एक सपने को। जहां मेरे चाचा इंद्रनाथ की अंत्येष्टि की तरह, कोई एक दर्ज़न चींटियां मृत चींटी को अपने कंधों पर उठाए जा रही थीं। उनके पीछे चींटियों की एक जमात कोरस गाते-गाते चल रही थी।

माथे पर मां के हाथ की छुअन ने मुझे जगा दिया। बाहर दोपहर थी। मैंने खिड़की की ओर देखा। मृत चींटी वहां नहीं थी।

इस बार बुखार कई दिनों तक बना रहा। कोई अचरज नहीं, क्योंकि घर का हर बाशिंदा चींटियों को मारने पर तुला था। कैसे जा सकता था बुखार, जब सारा दिन चींटियों का आर्तनाद कानों को भेदे जाता हो?

फिर एक और समस्या भी थी। जब रसोई में चींटियों की मारकाट मची होती, चींटियों के झुण्ड के झुण्ड मेरी खिड़की की चौखट पर आकर विलाप करते। मैं समझ गया कि मुझ से कुछ करने की गुहार की जा रही है। या तो मारकाट बंद हो या फिर इस कत्लेआम में लिप्त अपराधियों को सज़ा हो। लेकिन चूंकि बुखार में लिपटा था इसलिए मैं कुछ न कर सका। और अगर मैं स्वस्थ होता भी तो भी कैसे मुझ जैसा छोटा बालक बड़ों को कुछ करने से रोक सकता था? लेकिन एक दिन मैं कुछ-न-कुछ तो करने को बाध्य हो ही गया। मुझे पूरा-पूरा तो याद नहीं कि वो कौन-सा दिन था। लेकिन इतना ज़रूर याद है कि वह अल्ल-सुबह का वक्त था। उठते ही मां के शब्द सुनाई दिए – एक चींटी फटीक के कान में घुस गई और उसे काट लिया।

खबर मुझे गुदगुदा गई लेकिन तभी मैंने झाडुओं को ज़ोर-ज़ोर से ज़मीन पर पटकने की आवाज़ सुनी। मैं समझ गया कि यह कहर चींटियों पर बरस रहा है।

तभी एक अजीब सी बात हुई। "बचाओ .... बचाओ" की तीखी आवाज़ें सुनाई पड़ने लगीं। मैंने खिड़की की ओर देखा। चींटियों का एक बड़ा हुजूम चौखट पर मौजूद था और उत्तेजित हो इधर-उधर घूम रहा था। उनकी पुकार सुन मैं और अधिक शांत न रह सका। अपने बुखार की बात भूलकर मैं बिस्तर से कूदा और कमरे से बाहर भागा। पहले पहल तो मुझे कुछ न सूझा। फिर मैंने ज़मीन पर पड़ा मिट्टी का घड़ा उठाया और उसे

ज़ोर से नीचे पटका। फिर मैं वे तमाम चीज़ें तोड़ने लगा जिन्हें तोड़ा जा सकता था। चाल कारगर हो गई। चींटियों का मारा जाना तुरंत बंद हो गया। मेरी मां, मेरे पिताजी, मेरी चाची, मेरा चचेरा भाई शबी सभी अपने-अपने कमरों से बाहर निकले और मुझे जकड़ लिया। मुझे फिर से बिस्तर पर डाला। कमरे के दरवाज़े बंद कर दिए गए।

मैं दिल खोलकर हंसा। मेरी खिड़की पर बैठी चींटियां शुक्रिया मनाती रहीं। और फिर वे पाईप में चली गईं। इसके तुरंत बाद मुझे घर छोड़ना पड़ा। एक दिन डॉक्टर ने मेरी जांच की और कहा कि मुझे इलाज हेतु अस्पताल में भर्ती करना होगा।

यह अस्पताल का एक कमरा है। पिछले चार दिनों से मैं यहां पर हूं।

पहले दिन झक साफ कमरे को देख मैं उदास हो आया था। जानता था कि इस म्यान में केवल एक चीज़ रह सकती है – सफाई या फिर चींटियां। नया होने की वजह से कमरे में कोई दरार, कोई सुराख भी न था। एक आला तक न था वहां कि चींटियां उसके पीछे या नीचे बसेरा कर सकें। हां, खिड़की के बाहर आम का एक पेड़ ज़रूर चहक रहा था, जिसकी एक डगाल मेरी पकड़ के भीतर थी।

विचार कौंधा, अगर कहीं चींटियां मिल सकती हैं तो बस इसी डाल पर। लेकिन पहले दिन तो मैं खिड़की के पास न जा सका। जाता भी भला कैसे, मैं अकेला होता ही कब था। नर्स, डॉक्टर या हमारे घर का कोई बंदा, वहां हमेशा जमा रहता।

दूसरा दिन भी उतना ही खराब रहा।

खीज ऐसी हुई कि मैंने दवा की शीशी ज़मीन पर दे मारी। बस फिर क्या था। इधर कांच के टुकड़े मिली दवा का फैलना, उधर डॉक्टर का पारा चढ़ना। उसकी कड़ी-सूखी मूंछें और उसका ये मोटा चश्मा, दोनों ये बता रहे थे कि यह नया वाला डॉक्टर वैसे भी कोई अच्छा आदमी न था।

तीसरा दिन, और कुछ घट गया। मेरे कमरे में सिर्फ एक नर्स थी जो किसी किताब में मशगूल थी। बिस्तर पर पड़ा-पड़ा मैं किसी जुगत के बारे में सोच ही रहा था कि धम्म की आवाज़ आई। किताब नर्स के हाथों से फिसल कर ज़मीन पर औंधी जा गिरी थी। और नर्स थी ऊंघ के चंगुल में। चुपके से बिस्तर से उतर मैं पंजों के बल चलता खिड़की तक जा पहुंचा।

अपने शरीर को कोशिश से खींच मैं खिड़की के बाहर झुका। आम की डगाल को हाथ में ले मैंने उसे अपनी ओर खींचा।

इस सब में हल्का-सा एक खटका हुआ, जो नर्स को जगाने के हिसाब से

चित्र पुलक विश्वास

काफी था। बस फिर क्या था। चीखना चिल्लाना, भगदौड़ शुरू हो गई।

नर्स ज़ोर से चीख बिजली की सी तेज़ी से लपकी और मुझे अपनी बाहों में लपेट खींचने लगी.... वापस बिस्तर की ओर। इस बीच दूसरे लोग भी कमरे में आ चुके थे।

करने के लिए अब मेरे पास कुछ शेष न था।

बिना देर लगाए डॉक्टर ने एक इंजेक्शन घोंप दिया।

उनकी बातों से लगा कि वे सोच रहे थे कि मैं कूदने के मूड में था। पगले! इत्ती ऊपर से कूदता तो क्या मेरी हड्डी पसली एक न हो जाती और मैं क्या बचता!

डॉक्टर के जाने के बाद मुझे नींद आने लगी। मेरे घर के बिस्तर के पास वाली खिड़की याद आई और मुझे उदास कर गई। खुदा जाने कब घर-वापसी होगी।

मैं नींद की मुंडेर पर था कि अचानक एक महीन-सी आवाज़ आई, *आपकी सेवा में हाज़िर हैं ये सिपाही।*

मैंने आंखें खोलीं। मेरे बिस्तर के करीब मेज़ पर रखी दवा की बोतल पर दो बड़ी-बड़ी लाल चींटियां अपना सीना ताने खड़ी थीं। आम की डाल से जाने कब मेरे हाथ पर आ गई होंगी।

सिपाही! मैंने आश्चर्य ज़ाहिर किया। *जी सरकार, आपकी सेवा में जनाब।*

तुम्हारे नाम क्या हैं? एक ने कहा लाल बहादुर सिंह और दूसरे का नाम था लाल चन्द पाण्डे।

मुझे खुशी हुई। मैंने उन्हें आगाह किया कि लोगों के कमरे में आने पर वे छिप जाएं वरना वे मारे जा सकते हैं। लाल चन्द और लाल बहादुर ने मुझे सलाम ठोंका और कहा *जी सरकार।* फिर दोनों ने एक-दो गाना सुनाया और मैं सुखी सपनों में खो गया।

मुझे आपको कल की एक घटना के बारे में अभी इसी पल बताना होगा। क्योंकि पांच बजने वाले हैं, डा'क साब आते ही होंगे।

मैं बिस्तर पर लेटा, मेज़ पर लाल चन्द और लाल बहादुर के बीच हो रही कुश्ती को देख रहा था। कायदे से मुझे नींद आनी चाहिए थी लेकिन गोलियां और इंजेक्शन बेअसर साबित हुए थे। या सही कहूं तो मैंने अपनी इच्छा-शक्ति से खुद को जगाए रखा था। अगर मैं दोपहर को सो जाता तो अपने इन नए दोस्तों से कब खेलता।

दोनों चींटियों ने बढ़िया खेल का प्रदर्शन किया। बताना मुश्किल था कि कौन जीतेगा। कि अचानक भारी जूतों की आवाज़ हुई। डॉक्टर आ रहा था।

मैंने इशारा किया और लाल बहादुर जल्दी से मेज़ के नीचे गायब हो गया।

लेकिन लाल चन्द अपनी पीठ के बल गिर गया और हाथ-पांव पटकने लगा। इसलिए वह भाग न सका। और उस दुर्घटना की यही वजह थी।

डॉक्टर आया। चींटी देखी। अंग्रेज़ी में कुछ बुदबुदाया और हाथ से उसे मेज़ के नीचे धकेल दिया। उसकी चीखें उसकी दर्द की कहानी कह रही थीं। लेकिन मैं क्या करता। तब तक डॉक्टर ने मेरी नाड़ी जांचने के लिए मेरा हाथ पकड़ लिया था। मैंने फिर भी उठने की कोशिश की, लेकिन नर्स ने मुझे पकड़ कर लिटा दिया। जांच के बाद हमेशा की तरह डॉक्टर ने उदास-सा चेहरा बनाया और अपनी मूंछों के कोने खुजाने लगा। वह दरवाज़े की ओर मुड़ने ही वाला था कि अचानक उसने अपना चेहरा घुमाया, उछला

और अंग्रेज़ी में तीन बार ज़ोर से चिल्लाया 'आउच्च!'।

फिर क्या था सारे बंधन ढीले पड़ गए। उसका स्टेथोस्कोप उसके हाथ से दूर जा छिटका, उसका चश्मा नाक से कूदा, नीचे गिरा और चूर-चूर हो गया। जैकेट को निकाल फैंकने की जद्दोज़हद में उसका एक बटन जैकेट से आज़ाद हो चला। उसकी टाई गले पर और कस कर लिपट गई।

उसका हांफना और सिसकारी भरना तब तक जारी रहा जब तक कि उसे टाई से मुक्ति न मिली। जैसे ही उसने इधर-उधर कूदते चिल्लाते हुए अपनी शर्ट उतारी, उसकी बनियान का छेद सामने हो आया। मैं भौंचक्का था!

"क्या हुआ सर!" नर्स चकराई।

डॉक्टर का बंदर नाच और चिल्लाना जारी था, "एक लाल चींटी मेरे बाजू से चढ़ कर अंदर घुस गई। आउच्च।"

बढिया... बहुत बढ़िया ... मुझे मालूम था, ऐसा ही होगा। यही उसका सही इलाज है।

लाल बहादुर ने अपने दोस्त का बदला ले लिया था।

अगर वे मुझे इस वक्त देखते तो जानते कि *सदानन्द खुश हुआ!*

सत्यजीत रे: प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक। बच्चों के लिए फिल्म बनाने के अलावा फंतासी एवं रोमांचकारी साहित्य का सृजन किया है।

अनुवाद: मनोहर नोतानी: अनुवाद कार्य में रुचि, भोपाल में रहते हैं।

चित्र: विप्लव शशि: कला के विद्यार्थी हैं, फिलहाल बड़ोदा विश्वविद्यालय में पढ़ाई कर रहे हैं। इस कहानी में कुछ चित्र 'छोटी चींटी बड़ा काम' पुस्तक (प्रकाशक: नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया) से लिए हैं जिन्हें **पुलक विश्वास** ने बनाया है।

मौका है कुदरत को समझने का

हमारे आसपास कुदरत ने कितना कुछ बिखेरा हुआ है। कुदरत के इस खज़ाने को देखने के लिए चाहिए थोड़ा समय और धैर्य। इन दोनों के साथ यदि रेखांकन में कुशल हाथ हो तो सोने में सुहागा।

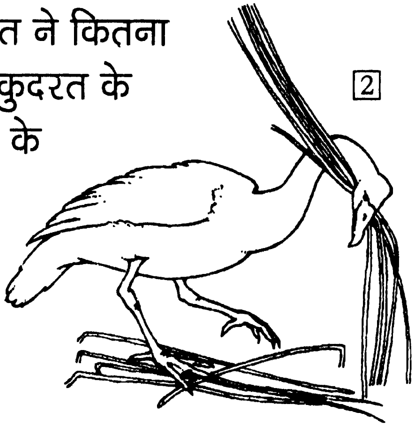

2

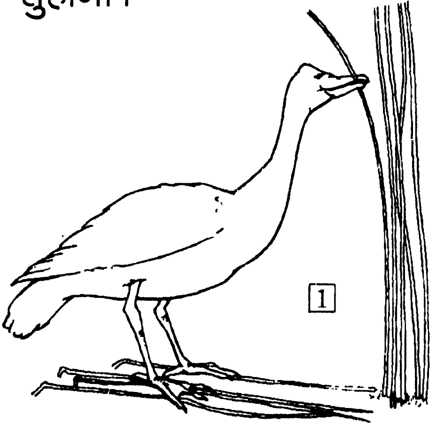

1

संदर्भ में लेखों के माध्यम से हमारी लगातार कोशिश होती रही है कि आपको आसपास के जीव-जगत की खूबियों से वाकिफ करवाते रहें।

अब हम आपको भी अपनी इस पहल में शामिल करना चाहते हैं।

आप अपने आसपास के पेड़-पौधों, शंख-सिपियों, पत्थरों, कीट-पतंगों, दो पायों, चौपायों .... पर करीबी नज़र रखिए, उनका अवलोकन कीजिए और ऐसी कोई बात जो आपको उनमें

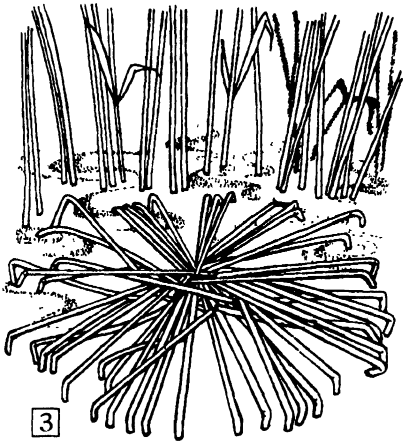

3

खास लगे उसका स्केच बनाकर हमारे पास भेजिए। हां, आप जो स्केच भेज रहे हैं उसके बारे में थोड़ा-बहुत वर्णन भी साथ दीजिए।

4

रेशम कीट का जीवन चक्र

के. आर. शर्मा

पिछले अंक में आपने देखा कि एक फलनुमा रचना किसी पतिंगे का ककून था। इस ककून में से एक पतिंगा निकलता है। यहां हम उस पतिंगे की वयस्क अवस्था के चित्र भी दे रहे हैं।

कीटों के कायांतरण के बारे में आपने पढ़ा ही होगा कि ककून में से निकलने वाला कीट अपने जीवन की बाकी अवस्थाओं से काफी भिन्नता लिए होता है। टसर सिल्क मॉथ में तो ककून को फाड़कर निकलने वाले पतिंगे में नर और मादा में बाहर से देखकर आप आसानी से फर्क कर सकते हैं। साथ दिए चित्र देखिए। क्या आप चित्र में देखकर नर और मादा पतिंगे में फर्क कर सकते हैं?

टसर सिल्क मॉथ के जीवनचक्र में मादा अंडे देती है। इन अंडों में से इल्ली यानी केटरपिलर निकलता है। और कुछ दिनों के बाद यह केटरपिलर एक फलनुमा रचना प्यूपा में तब्दील हो जाता है। कुछ समय के बाद इसी प्यूपा में से पंख वाला पतिंगा निकलता है।

ऐसे उदाहरण प्रकृति में काफी मिल जाएंगे। अक्सर पेड़-पौधों पर रंग-बिरंगी इल्लियां दिखाई दे जाती हैं। ये इल्लियां तितली या पतिंगे के जीवन चक्र की लार्वा अवस्था है।

आप चाहें तो इन कीटों के जीवन चक्र का अध्ययन कर सकते हैं। यदि कहीं पर आपको इल्लियां मिलें तो उनको किसी गत्ते के डिब्बे में रख दीजिए और जिस पेड़-पौधे पर से उसको पकड़ा है उसकी पत्तियां भी, ताकि भोजन का प्रबंध भी हो जाए। इस अवस्था में इल्लियों का एक खास मकसद होता है भोजन करना, और खूब भोजन करना।

इल्ली में होने वाले बदलावों को आप नोट करें। इल्ली अपनी चमड़ी उतारती है जिसे Moulting कहते हैं। हर बार काया उतारने पर इसके आकार में बढ़ोतरी होती जाती है।

कुछ समय के बाद यह चलती-फिरती इल्ली आपको दिखाई नहीं देगी। वह अपने चारों ओर खोल ओढ़कर सुस्ता रही होगी। यही इसकी प्यूपा अवस्था है।

जब यह प्यूपा अवस्था में हो तब इसे भोजन की ज़रूरत नहीं होती। कुछ दिनों के बाद इस प्यूपा में से पंखदार तितली या पतिंगा बाहर निकल जाएगा। आप तितली और पतिंगे में अंतर आसानी से पहचान सकते हैं। जब तितली बैठती है तो इसके पंख खड़े होते हैं और पतिंगे के पंख ज़मीन की सतह के समांतर होते हैं।

यदि आप थोड़ा ध्यान से देखें तो पत्तियों और शाखाओं पर इनके अंडे भी देख सकते हैं। यदि आपको अंडे मिल जाएं तो अंडे से लेकर वयस्क तक की अवस्थाओं का अध्ययन कर सकते हैं।

5
6
2
1
7
4
3

12758

लव्य की ओर से राजेश खिंदरी द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल से मुद्रित एवं लव्य ई-7/453 एच. आई. जी., अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462016 से प्रकाशित। संपादक - राजेश खिंदरी